गांधीजीकी कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

अहिंसक समाजवादकी ओर	१ ००
आरोग्यकी कुंजी	० ४४
आर्थिक और औद्योगिक जीवन — भाग १	४ ००
खादी क्यों और कैसे?	२ ००
गांवोंकी मददमें	० ४०
गोसेवा	१ ५०
बापूकी [illegible]	२ ५०
बापूके पत्र कु० प्रेमाबहन कंटकके नाम	४ ००
मेरा धर्म	२ ००
मेरे सपनोंका भारत	२ ५०
मोहन माला	१ २५
रामनाम	० ५०
विद्यार्थियोंसे	२ ००
विश्वशांतिका अहिंसक मार्ग	० ४०
शिक्षाकी समस्या	३ ५०
सच्ची शिक्षा	२ ००
सत्य ही ईश्वर है	० ८०
सर्वोदय	२ ००
स्त्रियां और उनकी समस्यायें	१ ००
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१ ५०

डाकखर्च अलग

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद-१४

अन्य विचार-प्रेरक पुस्तकें

आत्म रचना अथवा आश्रमी शिक्षा — १	१ ५०
आत्म रचना अथवा आश्रमी शिक्षा — २	१ ५०
आत्म रचना अथवा आश्रमी शिक्षा — ३	१ ५०
आधुनिक जगतमें गांधीजीकी कार्य-पद्धतियां	१ ००
आशाका एकमात्र मार्ग	२ ००
गांधीजी और गुरुदेव	० ८०
गांधीजीकी साधना	३ ००
गीता मंथन	३ ००
गीता रत्न प्रभा	३ ०
ग्रामसेवाके दस कार्यक्रम	१ २५
जड़मूलसे क्रांति	१ ५०
जीवन शोधन	३ ०
तालीमकी बुनियादें	२ ०
बापूकी छायामें	४ ००
बिहारकी कौमी आगमें	३ ००
विचार-दर्शन १	१ ५०
विचार-दर्शन २	१ ५०
विवेक और साधना	४ ०
शराबबन्दी क्यों?	१ ००
संसार और धर्म	२ ५०
सरदारकी अनुभव-वाणी	१ ००
हमारी बा	२ ००

डाकखर्च अलग

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद-१४

आश्रम-जीवन

[यरवडा मन्दिरसे भेजे हुए पत्र प्रवचन]

गांधीजी

अनुवादक

सोमेश्वर पुरोहित



नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद-१४

जीवन-पद्धति करते थे। उन्होंने 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास' नामक पुस्तकके आरंभमें ही लिखा है

आश्रमका अर्थ यहां सामूहिक धार्मिक जीवन है। वर्तमानकी दृष्टिसे भूतकालको देखने पर मुझे लगता है कि ऐसा आश्रम मेरे स्वभावमें ही था।

दक्षिण अफ्रीकासे आरम्भ करके जीवनके अंतिम दिन तक गांधीजीने इसी पद्धतिका पालन किया और धर्म-परायण सामूहिक जीवन कैसा होता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने रखा।

इस प्रकार आश्रम-जीवन का भावार्थ धार्मिक या धर्म-परायण जीवन होता है। गांधीजीने हिन्दू धर्मके अनेक महान सिद्धान्तों और महान व्रतोंको सामूहिक या व्यापक रूप देकर उनका अवलोकन किया, उन पर विचार किया, उन्हें व्यवहारमें उतारा और लोगोंको समझाया। उन्होंने प्राचीन आश्रम धर्मके सिद्धान्तोंको हिंद स्वराज्य अथवा रामराज्यकी दृष्टिसे सामूहिक अर्थ दिया और आश्रमके द्वारा ऐसी जीवन-पद्धतिका विकास करनेके लिए जीवन भर अथक प्रयत्न किया।

ऐसी जीवन-पद्धतिके कुछ सिद्धान्त इस पुस्तिकामें अलग अलग प्रवचनोंके रूपमें मिलेंगे। जो लोग इस विषयमें व्यवस्थित अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें इस पुस्तिकाके साथ 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास' खास तौर पर पढ़ना चाहिये। 'मंगल प्रभात' के प्रवचन भी इस सन्दर्भमें पठन जैसे माने जायंगे।

ये पत्र प्रवचन विशेष रूपसे आश्रमवासियोंको ही ध्यानमें रखकर लिखे गये हैं। लेकिन जो लोग किसी आश्रममें न रहते हुए भी अपनेको आश्रमवासी मानते हैं या आश्रम-जीवनको धर्म भावनासे अध्ययन करते हैं उनके लिए भी यह पुस्तिका बोधक सिद्ध होगी। दूसरे इसकी शैली इतनी सरल है और इसमें इतने अलग अलग विषयोंकी चर्चा की गई है कि छोटे बालक भी इसे रसके साथ पढ़ सकेंगे। यह इस पुस्तिकाका एक विशेष गुण है। इस तरह हम आशा करते हैं कि यह पुस्तिका सभी लोगोंके लिए लाभदायी सिद्ध होगी।

१-१-६२

पाठकोंसे

मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालों और उनमें दिलचस्पी लेनेवालोंसे मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे हमेशा एक ही रूपमें दिखाई देनेकी कोई परवाह नहीं है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे विचारोंको छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूं। उमरमें भले मैं बूढ़ा हो गया हूं, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा। मुझे एक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्यनारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठकको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे तब अगर उसे मेरी समझदारीमें विश्वास हो, तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबंधु ३०-४-'३३ — गांधीजी

अनुक्रमणिका

आश्रम-जीवन

१

मृत्युरूपी मित्र

सॉक्रेटीस एथेंसका सयाना और चतुर पुरुष हो गया है। उसके सच परन्तु सदाचारको बढ़ानेवाले विचार वहाँके नागरिकोंको पसन्द नहीं आये, इसलिए उसे मौतकी सजा मिली। उस जमानेमें वहाँ जहर खाकर मर जानेकी सजा भी दी जाती थी। सॉक्रेटीसको मीराबाईकी तरह जहरका प्याला पीना पड़ा था। उस पर अदालतमें मुकदमा चला उस समय सॉक्रेटीसने अपने भाषणमें जो अंतिम शब्द कहे थे उनके सार पर यहाँ हमें विचार करना है। उनसे हम सबको नसीहत लेनी चाहिये। सॉक्रेटीसको हम सुकरात कहेंगे। अरबस्तानके लोग उसे सुकरातके नामसे जानते थे।

सुकरातने कहा था : मेरा यह पक्का विश्वास है कि भले आदमीका इस लोकमें या परलोकमें कभी बुरा होता ही नहीं। भले आदमियोंको और उनके साथियोंको भगवान कभी छोड़ता नहीं। इसके सिवा मैं तो यह भी मानता हूँ कि मेरी क्या और दूसरोंकी क्या — मौत एकाएक नहीं होती। मौतकी सजा मुझे दी गई सजा नहीं है। मेरा मौतका और जीवनका झगड़ा जीवनके दुःखोंसे छूटनेका समय अब आ गया है। इसलिए आपने मुझे जहरका प्याला पीनेको दिया है। इसीमें मेरा कल्याण रहा होगा। और इस कारणसे मेरा फरियाद करनेवालों पर या मुझे सजा देनेवालों पर मेरे मनमें जरा भी क्रोध नहीं है। भले ही उन्होंने मेरा भला न चाहा हो, लेकिन वे लोग मेरा बुरा भी नहीं कर सके।

पंचोंसे इस समय मेरी एक विनती है। मेरे लड़के अगर भलाईका रास्ता छोड़कर कमाईके रास्ते जायँ और पैसेका लोभ करें, तो जैसे आप लोग मुझे सजा देते हैं वैसे ही मेरे लड़कोंको भी दीजिये। वे ढोंगी बनें और जो वे नहीं हैं वैसे दिखनेका प्रयत्न

करें तो भी आप उनको सजा दीजिये। अगर आप ऐसा करेंगे तो मैं और मेरे लड़के यह मानेंगे कि आपने सच झूठकी अच्छी तरह जांच करके हमारे साथ सच्चा न्याय किया है।

अपनी सन्तानके बारेमें सुकरातकी यह मांग अनोखी कही जायगी। जो पंच-सभा सुकरातका न्याय करनेके लिए बैठी थी वह अहिंसाके धर्मको नहीं जानती थी। इसीलिए सुकरातने अपने लड़कोंके लिए ऊपरकी मांग करके उन्हें सावधान कर दिया और यह बता दिया कि उनसे वह कैसे व्यवहारकी आशा रखता है। न्याय करनेवाले पंचोंको सुकरातने मीठा उलाहना दिया क्योंकि उन्होंने सुकरातको उसकी भलमनसाहतके लिए सजा दी थी। उसने अपने लड़कोंको अपना रास्ता उनका बाप सुझाकर यह बताया कि जो रास्ता उसने एथेन्सके नागरिकोंको दिखाया है वही उसके अपने लड़कोंके लिए भी है इतना ही नहीं सुकरातने यहां तक कह दिया कि अगर उसके लड़के उस रास्ते पर न चलें तो वे सजाके लायक माने जायं।

इस हफ्ते कुछ न लिखनेका मैंने पहलेसे ही विचार कर लिया था। लेकिन ऐसा करना मुझे खटका। इसलिए जब मैंने यहां अपने पासकी पुस्तकों पर नजर डाली तो मुझे सुकरातका भाषण दिखाई पड़ा। उसमेंसे कुछ लिखकर भेजूं ऐसा सोचकर ज्यों ही मैंने पुस्तक खोली त्यों ही मेरी नजर उसके जगप्रसिद्ध भाषण पर गई और उसमेंसे मैंने ऊपरका सार लिख डाला।

यरवडा मन्दिर
२९–२–३२

२

इमाम साहब

१

[illegible][1] के प्रकरण भेजनेके लिए अभी मैं तैयार नहीं हुआ हूँ। इस बार क्या भेजूँ यह सोचने पर मुझे लगा कि इमाम साहबके संस्मरण आश्रमवासियोंके लिए मुझे लिखने चाहिये और इस पवित्र कामम ढिलाई नहीं करनी चाहिये। इसलिए जितने भी भेजने जैसे संस्मरण मेरी कलम पर चढ़ेंगे उतने मैं यहाँ लिख डालूँगा।

मैं जिस साल (सन् १८९३) दक्षिण अफ्रीका गया था लगभग उसी साल इमाम साहब भी वहाँ गये थे। उनका पूरा नाम तो अब्दुल कादर बावाजीर था। लेकिन दक्षिण अफ्रीकामें उन्होंने इमामत[2] की थी, इसलिए बहुतसे लोग उन्हें इमाम साहबके नामसे ही जानते थे। मैं तो उन्हें दूसरे नामसे कभी पुकारता ही नहीं।

इमाम साहबके पिता बम्बईकी मशहूर जुम्मा मसजिदके मुअज्जिन[3] थे और अन्त समय तक उसी पद पर रहे थे। इमाम साहब हिन्दुस्तान आये उसके बाद ही उनके पिताजीकी मृत्यु हुई। अज़ानके लिए [illegible] हाथ बाँधकर खड़े हो रहे थे इतनेमें ही उनकी साँस उड़ गई। ऐसी मृत्यु बहुत शुभ और पवित्र मानी जाती है। इमाम साहबके बापदादा अरब थे। बहुत साल पहले वे कोंकणमें आकर बस गये थे इसलिए इमाम साहब कोंकणी भाषा भी जानते थे। उनकी मातृभाषा तो गुजराती ही थी लेकिन स्कूलकी पढ़ाई उनकी बहुत कम हुई थी। कुरान शरीफका

---

१ [illegible] उस पुस्तकका सोचा हुआ नाम है जो आश्रमके लोगोंकी दृष्टिसे गाथाओंके जैसे लिख भेजनेका विचार किया था। —प्रकाशक

२ मुसलमानोंके धर्मगुरुका काम।

३ मसजिदमें अज़ान पुकारनेवाले।

उच्चारण सुंदर ढंगसे कर सकें इतनी अरबी वे जानते थे। लेकिन कुरान शरीफके सारे अर्थ कर सकें इतना अरबीका ज्ञान उन्हें था ऐसा नहीं कहा जा सकता। अनुभवसे उन्होंने अंग्रेजी डच और क्रिओल फ्रेंच जान ली थी। उर्दू तो वे जानते ही थे। अपना काम चलाने लायक ज़ूलू भाषा भी वे जानते थे। उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि अगर उन्होंने नियमसे किसी स्कूलमें शिक्षा पाई होती तो वे बड़े विद्वान बनते और माने जाते। वे वकील नहीं थे फिर भी अनुभवसे वे कानूनकी पकड़से बचनेके रास्ते जान गये थे।

इमाम साहब व्यापारके लिए दक्षिण अफ्रीका गये थे। काफी पैसा भी उन्होंने कमाया था। जब व्यापार करना उन्होंने छोड़ दिया तब वे किरायेसे दी जानेवाली घोड़ागाड़ियां रखते थे और उससे भी अच्छी कमाई करते थे। वे आजाद स्वभावके थे इसलिए बड़े व्यापारमें तो कभी पड़े ही नहीं। उनकी आवाज मीठी थी। उनके पिता मुअज्जिन थे इसलिए जोहानिसबर्गकी मसजिदमें समय समय पर वे इमामत करते थे। लेकिन इस कामके लिए उन्होंने कभी कोई पैसा नहीं लिया।

इमाम साहबने दो विवाह किये थे। दोनों पत्नियां मलायाकी थीं। पहली पत्नीके साथ उनकी बहुत बनी नहीं इसलिए उन्होंने दूसरी स्त्रीसे विवाह किया — जिसे हम जानते थे। दूसरे विवाहसे इमाम साहबको बहुत सुख मिला। हाजी साहबाने इमाम साहबकी और इमाम साहबने हाजी साहबाकी सुन्दर सेवा की थी। दोनों एक-दूसरेके सच्चे मित्र थे। जहां तक मैंने इमाम साहबको समझा है उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि विवाहके बारेमें उनके विचार बहुत बदल गये थे और वे एक पत्नीके ही हिमायती हो गये थे।

यरवडा मन्दिर
७-३-३२

२

जैसा कि हम जानते हैं इमाम साहबने अपनी दोनों लड़कियोंका विवाह करनेमें देरीका बहुत खयाल रखा था। उनका प्रयत्न ऐसा

जमाई खोजनेका था जो हिन्दुस्तानकी सेवा कर हिन्दू-मुसलमानोंको एकता समझें और आश्रमके जीवनकी शोभा बढ़ायें। इसलिए उन्होंने गुजरातके गरीब मुसलमानोंको ही जमाईके रूपमें खोजा।

ऐसा कहा जा सकता है कि इमाम साहबसे मेरी पहली मुलाकात १९०२ में हुई जब मैं फिरसे दक्षिण अफ्रीका गया था। इमाम साहबने मुझसे कहा था कि उससे पहले भी हम दोनों मिले थे पर मुझे उनका कोई स्मरण नहीं है। जब मैंने जोहानिसबर्गमें वकालत शुरू की तब वे मुवक्किलोंके साथ मेरे पास आया करते थे। उस समय उनकी शान कुछ और ही थी। पोशाक व अंग्रेजी ढंगकी पहनते व सिर पर तुर्की टोपी रखते थे। इमाम साहबकी चतुराईको तो मैं तुरन्त जान गया था। लेकिन और बातोंमें मुझ पर उनकी छाप तुरन्त अच्छी नहीं पड़ी। मुझे वे बड़े हठीले मालूम हुए। लेकिन जैसे जैसे मैं उन्हें ज्यादा पहचानता गया वैसे वैसे वे मेरे अधिक प्रिय बनते गये।

ज्यों ज्यों उनके बारेमें मेरा अनुभव बढ़ता गया मैं यह समझता गया कि जिसे मैं उनका हठ मानता हूँ वह असलमें उनका हठ नहीं है बल्कि हर बातको पूरी तरह समझनेका उनका आग्रह है। किसी बातके बारेमें उन्होंने जो राय बनाई हो उसे वे तब तक नहीं छोड़ते थे जब तक उनकी बुद्धि स्वीकार न कर लेती था। मुझे यकीन नहीं है इसलिए वकालतसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंमें वकील जो कुछ कह दे वह वेदवाक्य — वकालत करने लायक बात — है ऐसा वे कभी मानकर चलते ही नहीं थे। वकालतसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंमें भी वे वकीलोंके साथ बहस करते रहते थे। इमाम साहबने स्कूली शिक्षा नहीं पाई थी फिर भी अपनी बुद्धि पर उनका पूरा विश्वास था। इसके सिवा स्वाभिमानके सवाल पर वे कभी नहीं झुकते थे। इसलिए किसीके असरमें न आकर अपनी बातको मजबूतीसे पकड़ रखनेकी इमाम साहबमें जो भारी शक्ति थी उसे मैंने बहुत जल्दी पहचान लिया था।

पहले तो इमाम साहब मुवक्किलकी ओरसे उनका मामला समझानेके लिए मेरे पास आते थे। लेकिन दुनियामें चलनेवाली बातोंमें वे दिलचस्पी लेते थे और मुझे भी उनकी चर्चामें उतारते थे। लेकिन

अफ्रीकामें हमारे हिन्दुस्तानी लोगोंको जो दुःख भोगने पड़ते थे उनके बारेमें होनेवाली सभाओं और आन्दोलनों वगैरामें वे भाग लेते थे। बहुतसी बातोंमें वे मेरा साथ देते थे लेकिन जब मेरी कोई बात उन्हें पसन्द नहीं आती थी तब खुले आम भी मेरा विरोध करनेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी। परन्तु इस तरह धीरे धीरे इमाम साहब मेरी ओर खिंचते गये और जब सत्याग्रहकी लड़ाई दक्षिण अफ्रीकामें शुरू हुई तब लड़ाईमें वे पहाड़की तरह अडिग साबित हुए। कुछ लोग नीचे गिरे, कुछ अन्दरसे कमजोर पड़ गये, कुछने खुला विरोध किया, लेकिन इमाम साहब कभी अपनी प्रतिज्ञासे डिगे हों ऐसा मुझे याद ही नहीं आता। जब पहली बार उन्हें जेलकी सजा मिली तब किसीको ऐसी आशा नहीं थी कि वे जेलके भारी दुःख झेल सकेंगे। पहली जेल तो कुछ ही दिनकी थी। लेकिन कई लोगोंने, उनके लिए मनमें आदर रखनेवालोंने भी मुझसे कहा था, "इमाम साहब फिरसे जेल नहीं जा सकेंगे। वे बहुत नाजुक हैं, शौकीन आदमी हैं, उनकी जरूरतें ज्यादा हैं।" यह बात बहुत हद तक सच भी थी। लेकिन इन सबके बावजूद इमाम साहब कभी कमजोर नहीं पड़े। और जो लोग सादगी पसन्द माने जाते थे उन्हें मैंने नीचे गिरते देखा था। इमाम साहबमें त्याग करनेकी कुरबानी देनेकी बहुत बड़ी शक्ति थी। किसी बातका निश्चय करनेसे पहले वे खूब सोचते थे, लेकिन एक बार निश्चय कर लेनेके बाद उस पर डटे रहनेकी उनमें अनोखी शक्ति थी।

जब इमाम साहब सत्याग्रहमें कूदे थे तब उन्होंने सपनेमें भी कभी इसका खयाल नहीं किया था कि उन्हें अपना घरबार छोड़ना पड़ेगा और फकीरी लेनी पड़ेगी। परन्तु जब उन्होंने देखा कि सत्याग्रहमें दृढ़ और मजबूत रहना हो तो घरबारका मोह छोड़ना ही पड़ेगा, तब उन्होंने एक पलमें यह मोह छोड़ दिया ऐसा कहा जा सकता है। इमाम साहबके लिए यह कोई मामूली बात नहीं थी।

यरवडा मन्दिर

१४-३- २

३

हमें यह याद रखना चाहिये कि इमाम साहबने अंग्रेजी ढंगसे अपना घर बसाया था। हाजी साहबाका रहन-सहन तो शुरूसे ही अंग्रेजी जैसा था। फातिमा और अमीना[1] को भी अंग्रेज बालकोंकी तरह पाल-पोसकर बड़ा किया गया था। ऐसे आदमीके लिए अपना सारा खर्च कम करके एकदम सादा जीवन अपनाना बहुत कठिन काम था। लेकिन इमाम साहब जब कोई बात करनेका निश्चय कर लेते थे तब कठिन काम भी उनके लिए आसान बन जाता था। यही कारण है कि जब मैंने जोहानिसबर्ग छोड़कर फिनिक्समें जा बसनेका निश्चय किया तब इमाम साहबने खुद फिनिक्समें बसनेकी अपनी इच्छा बताई। उनके निश्चय और दृढ़ताको मैं जानता था फिर भी यह बात सुनकर मैं दंग रह गया था। फिनिक्समें बसनेसे उन्हें क्या क्या कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी इसका खयाल मैंने उनके सामने रखा। जिन्होंने कभी हाथ-पाँव नहीं हिलाये और एक तरहका शाहका ही भोगा है वे एकाएक मेहनत-मजदूरी करनेवाले मजदूर कैसे बन सकेंगे? इमाम साहब खुद शायद फिनिक्सकी कड़ी मेहनतका जीवन पसन्द कर लें लेकिन उनकी पत्नी हाजी साहबाका क्या होगा? फातिमा और अमीनाका क्या होगा? इन सवालोंके लिए इमाम साहबका सीधा और स्पष्ट जवाब यह था: मैंने तो खुदा पर भरोसा रखा है। हाजी साहबाको आप नहीं पहचानते। लेकिन मैं तो जहाँ मैं रहूँगा वहाँ उनको तैयार ही हो जायगी। और जिस तरह मैं रहूँगा उसी तरह वे भी रहेंगी। इसलिए आपको दूसरी कोई कठिनाई न हो तो मेरा फिनिक्स आनेका पक्का निश्चय है। हमारी लड़ाई कब पूरी होगी यह कोई नहीं जानता। मुझे नहीं लगता कि अब मैं पहलेका या दूसरा कोई धंधा कर सकूँगा। और आपकी तरह मैंने भी यह समझ लिया है कि सत्याग्रहीको धन-दौलत परिवार वगैराका मोह छोड़ देना चाहिये। मुझे तो इमाम साहबका प्रस्ताव अच्छा लगा। मैंने

---

[1] इमाम साहबकी लड़कियाँ।

फिनिक्सके साथियोंको यह बात लिखी। उन्होंने भी इस प्रस्तावका स्वागत किया। और इमाम साहब अपने परिवारके साथ फिनिक्स आश्रममें आ गये।

आश्रमके बहुत लोगोंको शायद इस बातका पता नहीं होगा कि इमाम साहब फिनिक्सके सारे कामोंमें भाग लेने लग गये थे। सबको अपना अपना पानी नीचे बहनेवाले झरनेसे भर कर लाना होता था। यह झरना निचाईमें था। और लगभग पचास फुट ऊंची एक टेकरी पर फिनिक्स आश्रमके मकान बांधे गये थे। इमाम साहब उस समय भी नाजुक ही थे लेकिन सवेरेके समय वे बिलानागा अपनी कावर लेकर नीचे उतर जाते और धीरे धीरे पानी भर कर ऊपर ले आते थे। आश्रममें आज जो स्थान चरखेका है वही स्थान फिनिक्समें छापाखानेका था। छापाखानेके किसी न किसी विभागमें लड़के-लड़कियोंको बूढ़ बूढ़ियोंको पढ़े लिखों और अनपढ़ोंको—सभी लोगोंको काम करना होता था। टाइप जमाना (कंपोज करना) अखबार[1]की तह करना रैपर तैयार करना टिकट चिपकाना मशीन बन्द हो जाय तब चक्र घुमाना—जैसे अनेक छोटे-बड़े काम वहांके लोगोंको करने पड़ते थे। इन कामोंमें अपना थोड़ा समय सभीको देना होता था खास करके अखबार निकालनेके दिन। इस काममें इमाम साहब हाजी साहबा फातिमा और अमीना चारों ही हिस्सा लेते थे। इमाम साहबने टाइप जमाना सीख लिया था। यह उनकी उमरमें और उनके जैसे आदमीके लिए अचरजकी बात थी। इस प्रकार इमाम साहब फिनिक्सके जीवनमें पूरी तरह घुल मिल गये थे। इमाम साहब तथा उनके परिवारके लोग मांस खानेके आदी थे। लेकिन फिनिक्समें इमाम साहबने कभी मांस पकाया हो ऐसा मुझे बिलकुल याद नहीं आता।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि इमाम साहब किसी भी तरह कच्चे या लापरवाह मुसलमान थे। नमाज रोजे वगैरामें इमाम साहब या उनका परिवार कभी भी नागा नहीं करते थे। लेकिन

१ गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें फिनिक्स आश्रमसे इन्डियन ओपीनियन नामका अखबार निकालते थे।

फिनिक्सवासियोंके साथ एकरूप होकर इमाम साहब इस्लामकी सभ्यता और संस्कृतिका सुन्दर दर्शन कराते थे।

लेकिन इमाम साहबकी त्यागशक्तिकी इससे भी कड़ी कसौटी होनी अभी बाकी थी। वैसे तो वे कई बार जेल गये थे और जेलमें आदर्श कैदीका जीवन बिताते थे। लेकिन १९१४ में जब फिनिक्समें कुछ लोगोंको छोड़कर बाकी सबके हिन्दुस्तान जानेका निश्चय हुआ तब इमाम साहबकी बड़ी कसौटीका समय आया। दक्षिण अफ्रीकामें इमाम साहबके लिए घर जमा हो गया था। हाजी साहबा फातिमा और अमीना हिन्दुस्तानको बिलकुल नहीं जानती थीं। हिन्दुस्तानकी भाषा भी वे नहीं जानती थीं। थोड़ी अंग्रेजी या डच ही उनकी भाषा थी। लेकिन इमाम साहबने अपना फैसला करनेमें जरा भी देर नहीं की। जहां मैं वहां इमाम साहब और उनका परिवार यह इमाम साहबका निश्चय था। यह थी सत्याग्रहके लिए इमाम साहबकी कुरबानी और यह था हिन्दू-मुस्लिम एकताको बढ़ानेमें उनका सहयोग।

हिन्दुस्तान पहुंचनेके बाद इमाम साहबने कैसा जीवन बिताया उसे तो सभी आश्रमवासी जानते हैं। मेरी यह पक्की राय है कि इमाम साहब दिनोंदिन अधिक ऊंचे उठते जाते थे। उनकी वृत्तियां शुद्ध होती जाती थीं। उनकी ईश्वरभक्ति बढ़ती जाती थी और आश्रमके नियमोंके बारेमें भी उनकी श्रद्धा बढ़ती जाती थी। लेकिन इमाम साहब हिन्दुस्तान आये उसके बादके उनके जीवनके संस्मरण लिखनेका मेरा इरादा नहीं है। यहां जो जो लोग उनके गहरे परिचयमें आये हैं वे अपने अपने अनुभव लिखें और मेरे इन संस्मरणोंके साथ उनका संग्रह हो इसमें एक उपयोगी काम समझता हूं।

यरवडा मन्दिर
२१-३-३२

३

शिक्षाके विषयमें दो शब्द

जान रस्किन उत्तम कथाके लेखक अध्यापक और धर्मज्ञ पुरुष थे। उनकी मृत्यु १८८० के आसपास हुई। उनकी एक पुस्तक[1] का मुझ पर बहुत ही गहरा असर हुआ और उसके बताये हुए रास्ते पर चलनेका निश्चय करके मैंने क्षणभरमें अपने जीवनमें बड़े महत्त्वके फेरबदल कर डाले थे। ज्यादातर आश्रमवासी तो यह बात जानते ही होंगे। रस्किनने १८७१ में सिर्फ मजदूर-वर्गको ख्यालमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। इन पत्रोंकी तारीफ मैंने टाल्स्टायके किसी लेखमें पढ़ी थी। लेकिन आज तक मैं उन पत्रोंको प्राप्त नहीं कर पाया था। रस्किनके कार्यों तथा उनकी रचनात्मक प्रवृत्तिसे सम्बन्ध रखने वाली एक पुस्तक मेरे साथ यहां जेलमें आई थी। वह पुस्तक मैंने यहां पढ़ी। उसमें भी रस्किनके मासिक पत्रोंकी बात लिखी है। उसके आधार पर मैंने विलायतमें रस्किनकी एक शिष्याको पत्र लिखा। वही इस पुस्तिकाकी लेखिका थी। वह बेचारी गरीब थी। पुस्तकके रूपमें छपे हुए रस्किनके पत्र भला वह मुझे कैसे भेजती? मूर्खतासे या झूठे शिष्टाचारके कारण मैंने उसे यह नहीं लिखा कि वह आश्रमसे पुस्तकके दाम मंगवा ले। उस भली बहनने अपनेसे अधिक अच्छी स्थितिवाले एक मित्रको मेरा पत्र भेज दिया। वे 'स्पेक्टेटर' नामके पत्रके सञ्चालक थे। उनसे मैं विलायतमें मिल भी चुका था। उन्होंने रस्किनके मासिक पत्रोंको पुस्तकके रूपमें चार भागोंमें छपवाया था। ये चारों भाग उन्होंने मेरे पास भेज दिये। उनमें से पहला भाग आजकल मैं पढ़ रहा हूं। पत्रोंमें जो विचार रस्किनने बताये हैं वे उत्तम हैं। और हमारे अनेक

---

१ इस अंग्रेजी पुस्तकका नाम है 'अन्टु दिस लास्ट'। इसका गुजराती रूपान्तर 'सर्वोदय' नामसे प्रसिद्ध हुआ। गुजराती और हिन्दी संस्करण 'सर्वोदय' नामसे नवजीवन ट्रस्टने प्रसिद्ध किये हैं।

विचारोंसे व भिन्न हैं — इस हद तक भिन्न हैं कि कोई अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो कुछ लिखा है वह और आश्रममें हम जो कुछ करते हैं वह सब रस्किनके इन लेखोंमें से ही हमने चुराया है। चुराया शब्दका अर्थ तो सब लोग समझ ही गये होंगे। जो विचार या आचार जिस व्यक्तिसे लिया गया हो उसका नाम छिपाकर उसे हम अपना विचार या आचार कहें तो कहा जायगा कि हमने उसे चुराया है।

रस्किनने बहुत लिखा है। परन्तु उसमें से इस बार तो मैं कुछ ही विचार यहां देना चाहता हूं। रस्किन कहते हैं कि बिलकुल अक्षर-ज्ञान (शिक्षा) न होनेके बजाय थोड़ा भी अगर हो तो वह ज्यादा अच्छा है ऐसा जो माना जाता है उसमें गहरी भूल है। रस्किनका यह स्पष्ट मत है कि जो शिक्षा सच्ची है जो आत्माकी पहचान करानेवाली है वही वास्तवमें शिक्षा है और वही हमें प्राप्त करना चाहिये। इसके बाद वे कहते हैं कि इस दुनियामें हर मनुष्यको तीन चीजोंकी और तीन गुणोंकी जरूरत रहती है। जो मनुष्य इन्हें प्राप्त करके इनका विकास नहीं कर सकता वह जीवनका मन्त्र जीनेकी सच्ची कुंजी ही नहीं जानता। इसलिए ये तीन चीजें और तीन गुण शिक्षाके आधार होने चाहियें। हरएक मनुष्यको — फिर वह बालक हो या बालिका — बचपनसे यह जानना ही चाहिये कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहा जाय, उन्हें किस तरह साफ रखा जाय और उनका क्या उपयोग होता है। रस्किनके बताये हुए तीन गुण हैं गुणज्ञता — गुणोंको पहचानना — आशा और प्रेम। जिन मनुष्योंमें सत्य वगैराके लिए आदर नहीं है जो किसी अच्छी वस्तुकी पहचान नहीं करते वे अपने घमंडके शिकार हैं और आत्मानन्दका — आत्माकी पहचान होने पर मिलनेवाले आनन्दका — उपभोग नहीं कर सकते। इसी तरह जिन लोगोंमें आशावाद नहीं है यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शंका रखते हैं उनका हृदय कभी प्रसन्न रह ही नहीं सकता। और जिनमें प्रेम नहीं है यानी अहिंसा नहीं है जो सारे जीवोंको अपने कुटुम्बी नहीं मान सकते वे जीनेका मन्त्र कभी साध ही नहीं सकते।

३

शिक्षाके विषयमें दो शब्द

जॉन रस्किन उत्तम कलाके लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ पुरुष थे। उनकी मृत्यु १८८०के आसपास हुई। उनकी एक पुस्तक[1] का मुझ पर बहुत ही गहरा असर हुआ और उसमें बताये हुए रास्ते पर चलनेका निश्चय करके मैंने क्षणभरमें अपने जीवनमें बड़े महत्त्वके परिवर्तन कर डाले थे। ज्यादातर आश्रमवासी तो यह बात जानते ही होंगे। रस्किनने १८७१ में सिर्फ मजदूर-वर्गको खयालमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। इन पत्रोंकी तारीफ मैंने टॉल्स्टॉयके किसी लेखमें पढ़ी थी। लेकिन आज तक मैं उन पत्रोंको प्राप्त नहीं कर पाया था। रस्किनके कार्यों तथा उनकी रचनात्मक प्रवृत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली एक पुस्तक मेरे साथ यहां जेलमें आई थी। वह पुस्तक मैंने यहां पढ़ी। उसमें भी रस्किनके मासिक पत्रोंकी बात लिखी है। उसके आधार पर मैंने विलायतमें रस्किनकी एक शिष्याको पत्र लिखा। वही इस पुस्तिकाकी लेखिका थी। वह बेचारी गरीब थी, पुस्तकके रूपमें छपे हुए रस्किनके पत्र भला वह कैसे भेजती? मूर्खतासे या झूठे शिष्टाचारके कारण मैंने उसे यह नहीं लिखा कि वह आश्रमसे पुस्तकके दाम मंगवा ले। उस भली बहनने अपनेसे अधिक अच्छी स्थितिवाले एक मित्रको मेरा पत्र भेज दिया। वे 'स्पेक्टेटर' नामके पत्रके सम्पादक थे। उनसे मैं विलायतमें मिल भी चुका था। उन्होंने रस्किनके मासिक पत्रोंको पुस्तकके रूपमें चार भागोंमें छपवाया था। ये चारों भाग उन्होंने मेरे पास भेज दिये। उनमें से पहला भाग आजकल मैं पढ़ रहा हूं। पत्रोंमें जो विचार रस्किनने बताये हैं वे उत्तम हैं। और हमारे अनेक

---

१ इस अंग्रेजी पुस्तकका नाम है 'अन्टु दिस लास्ट'। इसका गुजराती रूपान्तर 'सर्वोदय' नामसे प्रसिद्ध हुआ। गुजराती और हिन्दी संस्करण 'सर्वोदय' नामसे नवजीवन ट्रस्टने प्रसिद्ध किये हैं।

विचारोंसे वे भिन्न हैं — इस हद तक भिन्न हैं कि कोई अनजान आदमी तो यही मान ले कि मैंने जो कुछ लिखा है वह और आश्रममें हम जो कुछ करते हैं वह सब रस्किनके इन लेखोंमें से ही हमने चुराया है। 'चुराया' शब्दका अर्थ तो सब लोग समझ ही गये होंगे। जो विचार या आचार जिस व्यक्तिसे लिया गया हो उसका नाम छिपाकर उसे हम अपना विचार या आचार कहें तो कहा जायगा कि हमने उसे चुराया है।

रस्किनने बहुत लिखा है। परन्तु उसमें से इस बार तो मैं कुछ ही विचार यहां देना चाहता हूं। रस्किन कहते हैं, बिलकुल अक्षरज्ञान (शिक्षा) न होनेके बजाय थोड़ा भी अगर हो तो वह ज्यादा अच्छा है ऐसा जो माना जाता है उसमें गहरी भूल है। रस्किनका यह स्पष्ट मत है कि जो शिक्षा सच्ची है जो आत्माकी पहचान करानेवाली है वही वास्तवमें शिक्षा है और वही हमें प्राप्त करना चाहिये। इसके बाद वे कहते हैं कि इस दुनियामें हर मनुष्यको तीन चीजों और तीन गुणोंकी जरूरत रहती है। जो मनुष्य इन्हें प्राप्त करके इनका विकास नहीं कर सकता वह जीवनका मन्त्र जीनेकी सच्ची कुंजी ही नहीं जानता। इसलिए ये तीन चीजें और तीन गुण शिक्षाके आधार होने चाहिये। हरएक मनुष्यको — फिर वह बालक हो या बालिका — बचपनसे यह जानना ही चाहिये कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहा जाय, उन्हें किस तरह साफ रखा जाय और उनसे क्या फायदा होता है। रस्किनके बताये हुए तीन गुण हैं गुणज्ञता — गुणोंको पहचानना — आशा और प्रेम। जिन मनुष्योंमें सत्य वगैराके लिए आदर नहीं है, जो किसी अच्छी वस्तुको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमंडके शिकार हैं और आत्मानन्दका — आत्माको पहचान लेने पर मिलनेवाले आनन्दका — उपभोग नहीं कर सकते। इसी तरह जिन लोगोंमें आशावाद नहीं है यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शंका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रसन्न रह ही नहीं सकता। और जिनमें प्रेम नहीं है यानी अहिंसा नहीं है, जो सारे जीवोंको अपने कुटुम्बी नहीं मान सकते, वे जीनेका मन्त्र कभी साध ही नहीं सकते।

इस विषय पर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। वह सब तो मैं किसी समय हमारा समाज समझ सके ऐसी भाषामें लिख पाया तो लिखूंगा। लेकिन आज मैं इतनेसे ही संतोष कर लेता हूं। साथ ही इतना मैं और कह दूं कि जिस विषय पर हम सीधी-सादी भाषामें विचार करते आये हैं और जिसे हम अपने आचरणमें उतारनेका प्रयत्न कर रहे हैं लगभग उसी सबको रस्किनने अपनी मंजी हुई और समृद्ध भाषामें अंग्रेज प्रजा समझ सके ऐसे ढंगसे उसके सामने रखा है। यहां मैं तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है लेकिन दो भाषाशास्त्रियोंकी की है। रस्किनको भाषाशास्त्रका जो ज्ञान था उसकी बराबरी मेरे जैसे आदमी नहीं कर सकते। लेकिन एक समय जरूर आयेगा जब सिर्फ भाषाका ही प्रेम व्यापक बनेगा। उस समय भाषाके पीछे अपना सब-कुछ त्याग देनेवाले रस्किन जैसे शास्त्री हमारे यहां भी निकलेंगे और वे वैसी ही असरकारक भाषामें लिखेंगे जैसी असरकारक अंग्रेजीमें रस्किनने लिखा है।

यरवडा मन्दिर
२८-३-३२

४

रूसकी एक धर्म-परायण महिला

[यह लेख श्री महादेव देसाईका लिखा हुआ है।]

गांधीजी पिछले साल विलायतमें थे तब वहांके प्रधानमंत्री और भारत मंत्रीने अपनी लिखी हुई एक एक पुस्तक भेंटके रूपमें उन्हें दी थी। जेलमें आते समय साथमें लाने जैसी अनेक पुस्तकोंमें ये दो पुस्तकें भी गांधीजी लाये थे। और यहां पढ़ने पर ही ये दोनों पुस्तकें उन्हें पढ़ डालीं। भारत मंत्री सर सेम्युअल होरकी पुस्तक रूसके बारेमें है। आजसे १८ साल पहले यरोपमें एक बड़ा युद्ध छिड़ा। उसमें एक ओर इंग्लैंड साथ फ्रांस और रूस शरीक हुए और इनके खिलाफ जर्मनीके

साथ दूसरे कुछ राष्ट्र जुड़े। लड़ाईकी घोषणा होते ही इंग्लैण्डके नौजवान धड़ाधड़ भरती होने लगे। मालती-बहन भी स्वयंसेवक होकर भी सेनामें भरती हुआ। लेकिन उनकी बारी देशके बाहर लड़ाईके मोर्चे पर जानेकी नहीं आई। इससे उनका मन अधीर और व्याकुल रहने लगा। इस मौके पर स्त्रीकी अधिकसे अधिक सेवा किस प्रकार की जा सकती है इस पर उन्होंने विचार किया और सोच विचारके बाद उन्होंने नर्स जाकर मदद देनेके लिए उपयोगी साबित हो ऐसा होनेके मकसदके लिए एक सालकी समाचार-संस्थामें शरीक होनेका इरादा किया। इसके लिए रोज तीन-चार घंटेका समय देकर एक वर्षमें उन्होंने उसका सारा अध्ययन पूरा किया और उसमें एक महत्त्वपूर्ण नौकरी प्राप्त की तभी उनके मनको शान्ति मिली। अन्तमें इस स्थान पर तीन वर्ष तक काम करके इंग्लैण्डकी सेवा करते करते जो अनुभव उन्होंने प्राप्त किये उन्हींका वर्णन उनकी इस पुस्तकमें हुआ है। उस समय दुःखी पीड़ित और दया-भूखा देश था, उसकी प्रजा कितनी धर्म-परायण था, जान-मालके गुलाम पक्षके स्वराज्यके लिए उसने दुःख और कुचले हुए लोगोंने भी कम निःस्वार्थ काम किये—इन सबका इस पुस्तकमें बहुत अच्छा वर्णन पढ़नेको मिलता है। जिस साध्वी धर्म-परायण महिलाकी कथा आगे दी जाती है वह इस पुस्तकका अत्यन्त करुण और रोमांच खड़े कर देनेवाला भाग है।

उस महिलाका नाम एलिज़ाबेथ था। वह मीराबाईकी तरह राजकुमारी थी। जर्मनीके एक रजवाड़ेकी वह राजकुमारी थी और रूसके एक राजकुमारके साथ उसका विवाह हुआ था। रानी विक्टोरियाका नाम तो हम सब जानते ही हैं। एलिज़ाबेथ रानी विक्टोरियाकी पुत्रीकी पुत्री थी। इसलिए वह अंग्रेज राजा पंचम जॉर्जकी फूफीकी पुत्री यानी बहन होती थी। उसके माता पिताने उस पर रजवाड़ेके रीति रिवाजोंके संस्कार डालनेके बजाय एक मनुष्योचित परिवारके संस्कार डालनेका प्रयत्न किया था। और इस बातकी सावधानी रखी थी कि सरलता और निरभिमान गुणोंमें उसका परिवार सामान्य समाजसे जरा भी कम न रहे। पिताकी चार कुमारियोंमें यह दूसरी कुमारी

इस विषय पर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। वह सब तो मैं किसी समय हमारा समाज समझ सके ऐसी भाषामें लिख पाया तो लिखूंगा। लेकिन आज मैं इतनेसे ही संतोष कर लेता हूं। साथ ही इतना मैं और कह दूं कि जिस विषय पर हम सीधी-सादी भाषामें विचार करते आये हैं और जिसे हम अपने आचरणमें उतारनेका प्रयत्न कर रहे हैं लगभग उसी सबको रस्किनने अपनी मंजी हुई और समृद्ध भाषामें अंग्रेज प्रजा समझ सके ऐसे ढंगसे उसके सामने रखा है। यहां मैंने तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है लेकिन दो भाषाशास्त्रियोंकी की है। रस्किनको भाषाशास्त्रका ज्ञान था उसकी बराबरी मेरे जैसे आदमी नहीं कर सकते। लेकिन ऐसा समय जरूर आयेगा जब सिर्फ भाषाका ही प्रेम व्यापक बनेगा। उस समय भाषाके पीछे अपना सब-कुछ त्याग देनेवाले रस्किन जैसे शास्त्री हमारे यहां भी निकलेंगे और वे वैसी ही असरकारक भाषामें लिखेंगे जैसी असरकारक अंग्रेजीमें रस्किनने लिखा है।

यरवडा मंदिर
२८-३-३२

४

रूसकी एक धर्मपरायण महिला

[यह लेख श्री महादेव देसाईका लिखा हुआ है।]

गांधीजी पिछले साल विलायतमें थे तब वहांके प्रधानमंत्री और भारत मंत्रीने अपना लिखा हुआ एक एक पुस्तक भेंटके रूपमें उन्हें दी थी। जेलमें आते समय साथमें ज्ञान जैसी जिन पुस्तकोंमें ये दो पुस्तकें भी गांधीजी लाये थे। और यहां पहुंचते ही ये दोनों पुस्तकें उन्होंने पढ़ डालीं। भारत मंत्री सर सेम्युअल होरकी पुस्तक रूसके बारेमें है। आजसे १८ साल पहले यूरोपमें एक बड़ा युद्ध छिड़ा। उसमें एक ओर इंग्लैण्ड साथ फ्रांस और रूस शरीक हुए और इनके खिलाफ जर्मनीके

खून करनेवाला हत्यारा पकड़ा गया। उस पर मुकदमा चला और उसे मौतकी सजा हुई। खूनी लड़का एक संस्कारी और शिक्षित युवक था। खूनीके लिए तिरस्कार या नफरत पैदा होनेके बजाय एलिजाबेथके मनमें धर्मनिष्ठा उमड़ आई। अपने माता पिता और पतिसे उसने यह सीखा था कि मृत्युके समय वैर और दुश्मनीको भूल जाना चाहिये और मरनेवालेको ईश्वरका चिंतन करनेका मौका दिलानेमें मदद करनी चाहिये। एलिजाबेथ अपने पतिके खूनीसे मिलने जेलमें गई।

खूनीने पूछा : आप कौन हैं?

एलिजाबेथ : मैं ग्रांड ड्यूककी विधवा पत्नी हूं। तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया था?

खूनी : मुझे आपका खून नहीं करना था। मैंने कई बार आपको आपके पतिके साथ देखा था। उस समय भी मेरे हाथमें बम था। लेकिन आप ग्रांड ड्यूकके साथ थीं इसलिए मैंने बम नहीं फेंका। इस बार उन्हें अकेला पाकर मुझे यह मौका मिल गया।

एलिजाबेथ : लेकिन भले आदमी, तुमने यह नहीं सोचा कि मेरे पतिका खून करके मुझे जिन्दा रखनेमें तुम मेरी मौतसे भी ज्यादा बुरी दशा कर दोगे? निर्दोष ड्यूकको मारते समय तुम्हारे दिलमें जरा भी हमदर्दी नहीं उठी? लेकिन जो हुआ सो हुआ। अब तुम्हारी मौत नजदीक है। इसलिए तुम अपने कसूरके लिए पछताओ और प्रभुसे क्षमा मांगो। मैं तुम्हारे लिए बाइबलकी एक प्रति लाई हूं।

एलिजाबेथने खूनीके हाथमें बाइबल रखा तब खूनीने उसके हाथमें एक पुर्जा रखा और कहा :

"मैं यह बाइबल पढ़ूंगा। और आप मेरी यह डायरी पढ़ियेगा। इस डायरीसे आपको पता चलेगा कि मुझे यह खून क्यों करना पड़ा, देशको स्वतंत्र बनानेमें बाधा डालनेवालोंका नाश करनेकी प्रतिज्ञा मैंने ली थी और बस उसका पालन किया।"

एलिज़ाबेथका विवाह उस समयके रूसके राजाके भाई ग्रांड ड्यूक सर्जके साथ हुआ था। और एलिज़ाबेथकी सबसे छोटी बहनका विवाह रूसके राजाके युवराजके साथ हुआ था। यह युवराज बादमें रूसका राजा बना। इस तरह दोनों सगी बहनें काका और भतीजेके साथ ब्याही गई थीं।

एलिज़ाबेथका ससुर जब रूसका राजा था तब रूसके अराजकतावादी दलके एक आदमीने उसका खून कर दिया था। रूसमें ऐसे खून होते ही रहते थे। रूसकी सारी प्रजा सदियोंसे राजाओंके अन्याय और अत्याचारका शिकार बनी हुई थी। और इस त्राससे छूटनेके लिए प्रजाके नौजवान लोगोंने शासकवर्गका नाश करनेका रास्ता खोज निकाला था।

एलिज़ाबेथ विवाहके बाद रूस गईं और दस-पन्द्रह बरस तक उसका जीवन सुखमें बीता। उसका पति मास्कोका गवर्नर था। जब ग्रांड ड्यूक सर्ज मास्कोका गवर्नर था तब उसका भतीजा रूसका राजा था। १९०५ में जब जापानके साथ रूसकी लड़ाई छिड़ी तब रूसकी प्रजाके बलवेको बचानेके ख्यालसे काकाने भतीजेको सुझाया कि प्रजाको विधान-सभाकी बख्शिश दी जाय। यों तो काका और भतीजा दोनों राज्य करनेकी पुरानी पद्धतिको ही माननेवाले थे, लेकिन कारणवश समयसे पहले चेतनेके लिए यह सुझाव भतीजेके सामने रखा था। यह सुझाव राजाने माना नहीं, इसलिए ग्रांड ड्यूकने गवर्नरके पदसे इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देकर वह मास्को शहर छोड़नेकी तैयारी कर रहा था, आधा सामान महलमें से हटा भी दिया गया था, इतनेमें उसका खून हो गया। एलिज़ाबेथ मास्कोमें रहकर वहाँमें मदद करनेके विचारसे एक सेवाश्रम खोलनेके प्रयत्नमें लगी थी। उसी बीच यह घटना घटी। वह इस सेवाश्रममें जानेके लिए बाहर निकल ही रही थी कि राजमहलके आँगनमें एक भयंकर धड़ाका सुनाई पड़ा। बाहर जाकर उसने देखा कि महलके दरवाजे और खिड़कियोंके काँच टूट गये हैं, जिस बग्घीमें उसका पति बैठने जा रहा था वह चकनाचूर हो गई है, कोचवान घायल पड़ा है और उसके पतिके प्राण-पखेरू उड़ गये हैं।

खून करनेवाला हत्यारा पकड़ा गया। उस पर मुकदमा चला और उसे मौतकी सजा हुई। खूनी स्वभावसे एक सदाचारी और शिक्षित युवक था। खूनीके लिए तिरस्कार या नफरत पैदा होनेके बजाय एलिज़ाबेथके मनमें धर्मनिष्ठा उमड़ आई। अपने माता पिता और पतिसे उसने यह सीखा था कि मृत्युके समय वैर और दुश्मनीको भूल जाना चाहिये और मरनेवालेको ईश्वरका चिंतन करनेका मौका दिलानेमें मदद करनी चाहिये। एलिज़ाबेथ अपने पतिके खूनीसे मिलने जेलमें गई।

खूनीने पूछा — आप कौन हैं?

एलिज़ाबेथ — मैं ग्रांड ड्यूककी विधवा पत्नी हूं। तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया था?

खूनी — मुझे आपका खून नहीं करना था। मैंने कई बार आपको आपके पतिके साथ देखा था। उस समय भी मेरे हाथमें बम था। लेकिन आप ग्रांड ड्यूकके साथ थीं इसलिए मैंने बम नहीं फेंका। इस बार उन्हें अकेला पाकर मुझे यह मौका मिल गया।

एलिज़ाबेथ — लेकिन भले आदमी, तुमने यह नहीं सोचा कि मेरे पतिका खून करके मुझे जिन्दा रखनेमें तुम मेरी मौतसे भी ज्यादा बुरी दशा कर दोगे? निर्दोष ड्यूकको मारते समय तुम्हारे दिलमें जरा भी नरमी नहीं आई? लेकिन जो हुआ सो हुआ। अब तुम्हारी मौत नजदीक है। इसलिए तुम अपनी करतूतके लिए पछताओ और प्रभुसे क्षमा मांगो। मैं तुम्हारे लिए बाइबलकी एक प्रति लाई हूं।

एलिज़ाबेथने खूनीके हाथमें बाइबल रखी तब खूनीने उसके हाथमें एक पुर्जा रखा और कहा —

"मैं यह बाइबल पढ़ूंगा। और आप मेरी यह डायरी पढ़ियेगा। इस डायरीसे आपको पता चलेगा कि मुझे यह खून क्यों करना पड़ा, रूसको स्वतंत्र बनानेमें बाधा डालनेवालोंका नाश करनेकी प्रतिज्ञा मैंने क्यों ली और कैसे उसका पालन किया।"

दोनोंने एक-दूसरेसे विदा ली। खून करनेवाला नौजवान भी धर्म पर श्रद्धा रखता था। शायद यह खून भी उसने इसीके लिए ऐसा करनेकी ईश्वरकी आज्ञा है यह मान कर ही किया होगा। लेकिन एलिजाबेथकी कोमल धर्मनिष्ठाको देखकर उस नौजवानकी धर्मनिष्ठा भी शायद कांपी होगी। उसने फांसीकी सजा देनेवाले न्यायाधीशके सामने कहा, "मैं अपना कोई बचाव नहीं करता हूं। मैंने ग्रांड डचेसकी विधवाके सामने अपना हृदय खोलकर बातें की हैं। वे भी इसकी गवाही देंगी।"

एलिजाबेथने अपनी जमीन-जायदाद, अपने गहने — विवाहकी सौभाग्य चिह्न अंगूठी तक — बेच डाले। इससे जो पैसा मिला उसका तीसरा हिस्सा उसने राज्यको दिया, एक तिहाई धर्मकार्योंके लिए — अस्पतालों, दवाखानों, अनाथालयों, क्षयरोगियोंके आरोग्य धामों वगैराके लिए — दिया और एक तिहाई सगे-सम्बन्धियोंको दे दिया। उसने राजमहल छोड़ दिया और ब्रह्मचारिणियोंके लिए एक सेवाश्रम खोलकर उसमें रहने चली गई। आम तौर पर ऐसे आश्रमोंमें रहनेवाले लोग केवल पूजा-पाठ करने और माला फेरनेमें ही लीन रहते हैं। लेकिन एलिजाबेथने अपने आश्रममें जितना जोर साधना और पूजा-पाठ पर दिया उतना ही सेवाधर्म पर भी दिया। उसने खुद जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहनेकी दीक्षा ली, लेकिन दूसरी स्त्रियोंके लिए इस दीक्षाको अनिवार्य नहीं बनाया। आश्रममें सकल स्त्रियां शामिल हुईं। उनमें से बहुतोंने जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहनेकी दीक्षा ली थी और दूसरी स्त्रियोंने आश्रममें रहनेके समय तककी दीक्षा ली थी। आश्रममें रहनेवाली इन स्त्रियोंमें राजकुमारियां या सरदारों और शिक्षित परिवारोंकी स्त्रियां थीं और किसान-वर्गकी स्त्रियां भी थीं। आश्रम चलानेके लिए पैसेकी भीख मांगने कहीं जाना नहीं पड़ता था। उनका काम ही ऐसा प्रसिद्ध हो गया था कि अनेक स्थानोंसे इस आश्रमकी नर्सोंकी मांग आती थी। आश्रमका अनाथालय विभाग सारे यूरोपमें अति उत्तम माना जाता था और उसके निर्वाहके लिए दानकी बाढ़ चली आती थी।

एलिज़ाबेथ कुलमाताके पद समासीन हुए भी एक अत्यंत कुशल नर्स मानी जाती थी।

एलिज़ाबेथका आश्रम जीवन जितना सेवामय था उतना ही तपोमय भी था। सारे दिन सतत काम करनेके बाद वह स्वयं अनेक रोगियोंकी सेवा भी आश्रमके अनेक विभागोंकी सुपरवाइज़ करती थी तथा आश्रमकी सारी व्यवस्था करती थी। ऐसे अनेक कामोंसे निवृत्त होनेके बाद रातका बहुतसा समय वह ईश्वरके ध्यान और भजनमें बिताती थी। घड़ी दो घड़ी सोती थी लेकिन एक सूखे पटिये पर — जिस पर न तो कुछ बिछानेको रहता था न ओढ़नेको और न सिरहाने रखनेको कोई तकिया रहता था। भोजनमें मांस मदिरा तो उसने कबसे अलग छोड़ दिये थे। जिस प्रकार एलिज़ाबेथके जीवनमें भक्तियोग और कर्मयोगका सुमेल हो गया था उसी प्रकार उसके आश्रममें भी इन दोनों योगोंका सुमेल हो गया था।

जापानके साथ रूसकी लड़ाई चल रही थी उस समय एलिज़ाबेथके आश्रमने सेवाके अनेक काम किये थे। उन दिनों घायलोंकी सेवाके लिए जो दल भेजे जाते थे उनका निभाव रखने और हरएक दलको पहुंचा भेजनेका नीरस काम भी उसके आश्रमने ही अपने सिर ले रखा था। १९१४ की लड़ाईमें भी एलिज़ाबेथके आश्रमका सेवा कार्य आरंभ ही था। लेकिन उसके जीवनकी सबसे बड़ी परीक्षा अभी आगे होनेवाली थी।

हम देख चुके हैं कि एलिज़ाबेथ जर्मनीके एक राजघरानेकी राजकुमारी थी। लड़ाई चल रही हो उस समय — और खास तौर पर मामूली भाई-भाईमें लड़ाई चल रही हो उस समय — वहम और शक-शुबहेका बाजार गरम रहता है। रूस १९१४ की लड़ाईमें जर्मनीके खिलाफ लड़ रहा था। इसलिए वहांके लोगोंके मनमें यह शक पैदा हुआ कि जर्मनीकी यह राजकुमारी छिपकर रूसमें जर्मनीकी मदद तो नहीं करती? लोग जहां भी जर्मनोंको देखते वहां उनके पीछे पड़ जाते उन्हें परेशान करते और मार भगाते थे। एक बार गुंडोंकी एक टोली एलिज़ाबेथके आश्रम पर चढ़ आई और आश्रमको उजाड़ना

दोनोंने एक-दूसरेसे विदा ली। खून करनेवाला नौजवान भी धर्म पर श्रद्धा रखता था। शायद यह खून भी उसने देशके लिए ऐसा करनेकी ईश्वरकी आज्ञा है यह मान कर ही किया होगा। लेकिन एलिज़ाबेथकी कोमल धर्मनिष्ठाको देखकर उस नौजवानकी धर्मनिष्ठा भी शायद बदल गई होगी। उसने फांसीकी सजा देनेवाले न्यायाधीशके सामने कहा: मुझे अपना कोई बचाव नहीं करना है। मैंने ग्रांड ड्यूककी विधवाके सामने अपना हृदय खोलकर बात की है। वे भी इसकी गवाही देंगी।

एलिज़ाबेथने अपनी जमीन-जायदाद, अपने गहने — विवाहका सौभाग्य-चिह्न अंगूठी तक — बेच डाले। इससे जो पैसा मिला उसका तीसरा हिस्सा उसने राज्यको दिया, एक तिहाई धर्मकार्योंके लिए — अस्पतालों, दवाखानों, अनाथालयों, क्षयरोगियोंके आरोग्य धामों वगैराके लिए — दिया और एक तिहाई सगे-सम्बन्धियोंको दे दिया। खुदने राजमहल छोड़ दिया और ब्रह्मचारिणियोंके लिए एक सेवाश्रम खोलकर उसमें रहने चली गई। आम तौर पर ऐसे आश्रमोंमें रहनेवाले लोग केवल पूजा-पाठ करने और माला फेरनेमें ही लीन रहते हैं। लेकिन एलिज़ाबेथने अपने आश्रममें जितना जोर प्रार्थना और पूजा-पाठ पर दिया उतना ही सेवाधर्म पर भी दिया। उसने खुद जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहनेकी दीक्षा ली लेकिन दूसरी स्त्रियोंके लिए इस दीक्षाको अनिवार्य नहीं बनाया। आश्रममें सत्रह स्त्रियां शामिल हुईं। उनमें से बारहने जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहनेकी दीक्षा ली थी और दूसरी स्त्रियोंने आश्रममें रहनेके समय तककी दीक्षा ली थी। आश्रममें रहनेवाली इन स्त्रियोंमें राजकुमारियां या सरकारी और शिक्षित परिवारोंकी स्त्रियां थीं और किसान-वर्गकी स्त्रियां भी थीं। आश्रम चलानेके लिए पैसेकी भीख मांगने कहीं जाना नहीं पड़ता था। उनका काम ही ऐसा प्रसिद्ध हो गया था कि अनेक स्थानोंसे इस आश्रमकी नर्सोंकी मांग आती थी। आश्रमका अनाथालय विभाग सारे यूरोपमें अति उत्तम माना जाता था और उसके निर्वाहके लिए दानकी बाढ़ चली आती थी।

एलिजाबेथने साथ झुककर प्रणाम किया। इसके बाद एलिजाबेथने उन लोगोंसे कहा — अब तुम्हें जो चाहिये सो खोज लो और ले जाओ।

उन्होंने सारा आश्रम खोज डाला, लेकिन उन्हें ले जाने जैसा कुछ मिला नहीं। तब बाहर आकर अपने साथियोंसे उन्होंने कहा, 'अरे यह तो बेकार एवं निकम्मा आश्रम है। यहां दूसरा कुछ भी नहीं है।'

यह तूफान तो इस तरह आया और चला गया। लेकिन कुछ दिनों बाद दूसरा तूफान आनेवाला था। इसमें राजाको हटाकर प्रजाने राज्यकी सत्ता अपने हाथमें ले ली थी। लेकिन प्रजामें भी दो दल हो गये थे। जिस दलने राज्यसत्ता हाथमें ली थी उससे भी अधिक शक्तिवाला एक दूसरा दल उठ खड़ा हुआ था। पहले दलवाले एलिजाबेथके पास आये और नम्रतासे उसे समझाने लगे: 'अब आपका आश्रम खतरेमें है। प्रजा पागल बन गई है। वह आपकी सेवाओंको नहीं समझ सकती। वह तो इतनी ही बात जानती है कि आप एक बार राज-परिवारमें थीं और राजाकी बड़ी बहन हैं। वह आपके प्राण लेने पर तुली हुई है। कृपा करके आप आश्रम छोड़ दीजिये और राजमहलमें आ जाइये। वहां आप पर कोई आंच नहीं आयेगी।'

एलिजाबेथने जवाब दिया, 'मैंने तो आश्रमको अपना जीवन अर्पण कर दिया है। मैं मरूंगी तो आश्रममें और जीऊंगी तो आश्रममें।

प्रयत्न करने लगी। शहरके नगरसेठको पता चलते ही वह आश्रममें जा पहुंचा और गढ़ाको उसने बिखर दिया। एल्ज़ाबेथकी छोटी बहन इसकी रानी थी। लेकिन उसके साथ बड़ी बहनका अधिक मिलना नहीं होता था। इसके साथ ही आगमें घी पड़नेकी तरह इसमें प्रजाने राजाके विरुद्ध बलवा खड़ा कर दिया। राजाको राजगद्दी छोड़कर भागना पड़ा। इस सबके बावजूद भी एल्ज़ाबेथन जिस सेवाकी दीक्षा ली थी उसमें वह जी जानसे लगी रही। लेकिन दंगाइयों पर फिरसे दंगा फसाद करनेकी सनक सवार हुई। कदखाने तोड़ डाले गये। उनसे बाहर निकले हुए कैदियों और दूसरे फसादियोंने एल्ज़ाबेथके आश्रमको चारों ओरसे घेर लिया। एल्ज़ाबेथ बाहर निकल कर सबके सामने अकेली खड़ी रही। ऊंची आवाजमें उसने सबसे कहा — शान्त हो जाओ। तुम्हें क्या चाहिये? क्या तुम यह मानते हो कि जमनीकी मन्द करनेके लिए यहां कोई छिपा षड्यंत्र हो रहा है? अन्दर आओ और देखो कि यहां क्या काम चल रहा है। अन्दर अगर हथियार गोला-बारूद जासूस वगैरा छिपा कर रखे गये हों तो तुम जरूर उन पर कब्जा कर लो। लेकिन खबरदार पांच आदमीसे ज्यादा कोई अन्दर न आना।

फसादियोंने टोलेने जोरसे चिल्लाकर कहा — हमें कुछ नहीं सुनना है। हम आपको बन्द करते हैं। चलिये हमारे साथ।

एल्ज़ाबेथने शान्त और स्वस्थ मनसे उत्तर दिया — मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूं। लेकिन इस संस्थाकी मैं कुलमाता हूं। इसलिए चलनेसे पहले मुझे दूसरी किसी बहनको इसका अधिकार सौंपना चाहिये और संस्थाकी सारी व्यवस्था कर देनी चाहिये।

ऐसा कहकर एल्ज़ाबेथने आश्रमकी सारी बहनोंको प्रार्थना मन्दिरमें जमा होनेके लिए कहा और फसादियोंके टोलेमें से पांच आदमियोंने हथियार बाहर रखकर आश्रमके भीतर आनेको कहा। वे शान्त हो गये और मनसे बसमें कर लिये गये आदमियोंकी तरह उसके पीछे पीछे अन्दर चले गये। ईसाके क्रॉसके सामने उन्होंने भी

एलिज़ाबेथके साथ झुककर प्रणाम किया। इसके बाद एलिज़ाबेथने उन लोगोंसे कहा — "अब तुम्हें जो चाहिये सो खोज लो और ले जाओ।"

उन्होंने सारा आश्रम खोज डाला। लेकिन उन्हें मन जैसा कुछ मिला नहीं। तब बाहर आकर अपने साथियोंसे उन्होंने कहा — "अरे, यह तो केवल एक निकम्मा आश्रम है। यहां दूसरा कुछ भी नहीं है।"

यह तूफान तो इस तरह आया और चला गया। लेकिन कुछ दिनों बाद दूसरा तूफान आनेवाला था। रूसमें राजाको हटाकर प्रजाने राज्यकी सत्ता अपने हाथमें ले ली थी। लेकिन प्रजामें भी दो दल हो गये थे। जिस दलने राज्यसत्ता हाथमें ली थी उससे भी अधिक शक्तिवाला एक दूसरा दल उठ खड़ा हुआ था। पहले दलवाले एलिज़ाबेथके पास आये और नम्रतासे उसे समझाने लगे — "अब आपका आश्रम खतरेमें है। प्रजा पागल बन गई है। वह आपकी सेवाओंको नहीं समझ सकती। वह तो इतनी ही बात जानती है कि आप एक बार राजपरिवारमें थीं और रानीकी बड़ी बहन हैं। वह आपके प्राण लेने पर तुली हुई है। कृपा करके आप आश्रम छोड़ दीजिये और राजमहलमें चली जाइये। वहां आप पर कोई आंच नहीं आयेगी।"

एलिज़ाबेथने जवाब दिया — "मैंने तो आश्रमको अपना जीवन अर्पण कर दिया है। मैं मरूंगी तो आश्रममें और जीऊंगी तो आश्रममें। मैंने फिर राजमहलका आसरा लेनेके लिए राजमहल नहीं छोड़ा था। अगर आप लोग मेरे आश्रमकी रक्षा न कर सकते हों तो उसे ईश्वरके भरोसे छोड़ दीजिये।"

इस प्रकार सारा रूस आग लगा हुआ था, लेकिन आश्रमका काम हमेशाकी तरह नियमित रूपसे चलता रहा। एलिज़ाबेथको आनेवाले तूफानकी आगाही तो मिलनी शुरू हो गई थी। उस मौके पर अपने मित्रको लिखे एक पत्रमें उसने बताया:

"इस समय ही ईश्वर पर रही हमारी श्रद्धाकी परीक्षा होती है। रूस — हमारा प्यारा रूस — टूट-फूटकर बिखर रहा

प्रयत्न करने लगी। शहरके नगरसेठको पता चलते ही वह आश्रममें जा पहुंचा और गढाको उसने बिखेर दिया। एलिजाबेथकी छोटी बहन इसकी रानी थी। लेकिन उसके साथ बनी बहनका अधिक मिलना नहीं होता था। इसके साथ ही आगमें घी पड़नेकी तरह इसमें प्रजाने राजाके विरुद्ध बलवा खड़ा कर दिया। राजाको राजगद्दी छोड़कर भागना पड़ा। इस सबके बावजूद भी एलिजाबेथने जिस सेवाकी दीक्षा ली थी उसमें वह जी जानसे लगी रहा। लेकिन दंगाइयों पर फिरसे दगा-फसाद करनेका सनक सवार हुई। कैदखाने तोड़ डाले गये। उनसे बाहर निकले हुए कैदियों और दूसरे फसादियोंने एलिजाबेथके आश्रमको चारों ओरसे घेर लिया। एलिजाबेथ बाहर निकल कर सबके सामने अकेली खड़ी रही। ऊंची आवाजमें उसने सबसे कहा — शांत हो जाओ। तुम्हें क्या चाहिये? क्या तुम यह मानते हो कि अपनीका [illegible] करनेके लिए यहां कोई छिपा षड्यन्त्र हो रहा है? अन्दर आओ और देखो कि यहां क्या काम चल रहा है। अन्दर अगर हथियार गोला-बारूद जासूस वगैरा छिपा कर रखे गये हों तो तुम जरूर उन पर कब्जा कर लो। लेकिन खबरदार पांच आदमीसे ज्यादा कोई अन्दर न आना।

फसादियोंके टोलेने जोरसे चिल्लाकर कहा — हमें कुछ नहीं सुनना है। हम आपको कैद करते हैं। चलिये हमारे साथ।

एलिजाबेथने शांत और स्वस्थ मनसे उत्तर दिया — मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूं। लेकिन इस संस्थाकी मैं मुखिया हूं। इसलिए चलनेसे पहले मुझे दूसरी किसी बहनको इसका अधिकार सौंपना चाहिये और संस्थाकी सारी व्यवस्था कर देनी चाहिये।

ऐसा कहकर एलिजाबेथने आश्रमकी सारी बहनोंको प्रार्थना मन्दिरमें जमा होनेके लिए कहा और फसादियोंके टोलेमें से पांच आदमियोंको हथियार बाहर रखकर आश्रमके भीतर आनेको कहा। वे लोग चुप हो गये और मंत्रसे वशमें कर लिये गये आदमियोंकी तरह उसके पीछे पीछे अन्दर चले गये। ईसाके नामके सामने उन्होंने भी

एलिज़ाबेथने माथा झुकाकर प्रणाम किया। इसके बाद एलिज़ाबेथने उन लोगोंसे कहा — 'अब तुम्हें जो चाहिये सो खोज लो और ले जाओ।'

उन्होंने सारा आश्रम खोज डाला लेकिन उन्हें कोई जानने जैसा कुछ मिला नहीं। तब बाहर आकर अपने साथियोंसे उन्होंने कहा — 'अरे यह तो केवल एक निकम्मा आश्रम है। यहाँ दूसरा कुछ भी नहीं है।'

यह तूफान तो इस तरह आया और चला गया। लेकिन कुछ दिनों बाद दूसरा तूफान आनेवाला था। इसमें राजाको हटाकर प्रजाने राज्यकी सत्ता अपने हाथमें ले ली थी। लेकिन प्रजामें भी दो दल हो गये थे। जिस दलने राज्यसत्ता हाथमें ली थी उसमें भी अधिक शक्तिवाला एक दूसरा दल उठ खड़ा हुआ था। पहले दलवाले एलिज़ाबेथके पास आये और नम्रतासे उसे समझाने लगे — 'अब आपका आश्रम खतरेमें है। प्रजा पागल बन गई है। वह आपके सेवाभावको नहीं समझ सकती। वह तो इतनी ही बात जानती है कि आप एक बार राज-परिवारमें थीं और रानीकी बड़ी बहन हैं। वह आपके प्राण लेने पर तुली हुई है। इसलिये कृपा करके आप आश्रम छोड़ दीजिये और राजमहलमें आ जाइये। वहाँ आप पर कोई आँच नहीं आयेगी।'

एलिज़ाबेथने जवाब दिया — 'मैंने तो आश्रमको अपना जीवन अर्पण कर दिया है। मैं मरूँगी तो आश्रममें और जीऊँगी तो आश्रममें। मैंने फिरसे राजमहलमें आनेके लिए राजमहल नहीं छोड़ा था। अगर आप लोग मेरे आश्रमकी रक्षा न कर सकते हों तो उसे ईश्वरके सहारे छोड़ दीजिये।'

इस प्रकार खतरा सरपर आ लगा हुआ था, लेकिन आश्रमका काम हमेशाकी तरह नियमित रूपसे चलता रहा। एलिज़ाबेथको आनेवाले खतरेकी आगाही कई दिन पहले ही हो गई थी। उस मौके पर अपने मित्रको लिखे एक पत्रमें उसने बताया :

'इस समय ही ईश्वर पर रखी हमारी श्रद्धाकी परीक्षा होती है। रूस — हमारा प्यारा रूस — टूक-टूक होकर बिखर रहा

है। मैं आसपास विनाश, बरबादी और तबाहीके सिवा और कुछ नहीं देखती। फिर भी मेरी यह श्रद्धा अटल है कि कड़ी कसौटी पर मनुष्यको कसनेवाला ईश्वर और दयालु कृपालु ईश्वर एक ही है। कल्पना करो कि एक भयंकर तूफान चला आ रहा है। तूफानमें सुंदर और भयंकर दोनों अंग होते हैं। तूफान आने पर कुछ लोग भाग-दौड़ मचाते हैं, कुछ लोग डरसे ही मौतके शिकार हो जाते हैं और कुछ लोग उस भयंकर तूफानमें भगवानके रूप — भयंकर — रूपका दर्शन कर सकते हैं। ऐसा ही तूफान आज हमारे चारों तरफ फैला हुआ है। हम ब्रह्मचारिणियां तो हमेशा ईश्वरकी प्रार्थनामें, कामकाजमें और सेवामें लगी रहती हैं। इसलिए हमारी आशा भी अखंड और अटूट है। और जो भी घटनायें घटती हैं उन सबमें हमें ईश्वरकी दयाके ही दर्शन होते हैं। ऐसे समयमें हम आशा रखकर जी रहे हैं, यही क्या एक चमत्कार नहीं है?

कुछ दिन बाद बोल्शेविक लोगोंने, जिनके हाथमें अब राज्यकी सत्ता आ गई थी, आश्रम पर चढ़ाई की। प्रजामें एलिजाबेथ और उसका आश्रम इतना प्रिय हो गया था कि आश्रममें तो कोई उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता था। इसलिए बोल्शेविकोंने एक बहाना निकाला — उसे हुक्म दिया कि अमुक स्थान पर राज-परिवारके लोग हैं। हम आपको वहीं ले जायेंगे। आप तैयार हो जाइये।

एलिजाबेथने अपनी सेविकाओंसे मिलनेकी इजाजत मांगी। लेकिन उसे इजाजत नहीं मिली। आश्रमकी एक दूसरी बहनके साथ उसे ले जाकर रेलके डिब्बेमें बिठाया गया। रास्तेसे एलिजाबेथने आश्रमकी बहनोंको बिदाका पत्र लिखा। जिस जगह राज-परिवारके कुछ आदमी थे, वहां एलिजाबेथको ले तो जाया गया। लेकिन वे सब कैदी थे। न तो उनके खाने-पीनेका ठिकाना था, न पहनने-ओढ़नेका ठिकाना था। सब लोग मौतकी राह देखते बैठे थे। राजा और रानी — एलिजाबेथकी छोटी बहन — दूसरी जगह कैद थे। १७ जुलाई, १९१८ के दिन राजा और रानी दोनोंकी हत्या की गई।

१८ जुलाईको एलिज़ाबेथ और उसके दूसरे साथियोंकी बारी आई। एलिज़ाबेथकी उसके साथियोंकी और उसके साथ आई हुई सहेलीकी आंखों पर पट्टी बांध दी गई और सबको पास ही पड़े हुए लोहेके मलबेके ढेर पर फेंक दिया गया। किसीने उसमें सुरंग लगाई और कुछ ही क्षणमें एक भयंकर धड़ाकेके साथ सबकी धज्जियां उड़ गईं! लोहेके ढेर पर फेंके जाने पर एलिज़ाबेथके मुंहसे जो शब्द निकले, उन्हें दूर खड़ा एक विमान सुन रहा था। वे शब्द थे: हे भगवान इन लोगोंको क्षमा कर। इन्हें भान नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं!

यरवडा मंदिर
४-४-'३२

५

आकाश-दर्शन

१

सत्यके पुजारीके रास्तेका कोई अन्त ही नहीं है। सत्य-नारायणके दर्शन करनेके लिए वह अपनेको कभी बूढ़ा नहीं मानता। जो मनुष्य अपना हर काम सत्यरूपी ईश्वरके लिए ही करता है और हर जगह सत्यको ही देखता है, उसके मार्गमें बुढ़ापा कभी रुकावट बनता ही नहीं। सत्यार्थी—सच्चा पुजारी—अपने ध्येयकी खोजके लिए सदा अजर और अमर ही रहता है।

ऐसी सुन्दर स्थितिका मैं बरसोंसे भास कर रहा हूं। जिस ज्ञानका लाभ मैं सत्यके अधिक पास जा सकता हूं ऐसा मुझे लगा, उसे पानेके प्रयत्नमें मेरा बुढ़ापा कभी बाधक नहीं बना। ऐसा ताजा उदाहरण मेरे जीवनमें आकाश-दर्शनका है। आकाशका सामान्य ज्ञान पानेकी इच्छा हृदयमें तो कई बार पैदा हुई थी। लेकिन मन मान लेता था कि हाथमें लिया हुआ काम मुझे इसमें गहरा नहीं उतरने

रातको आकाशमें हमें जो असंख्य तारागण दिखाई देते हैं उन सबका भी इस जगतको टिकाये रखनेमें स्थान है। इस प्रकार हमारा इस विश्वके सारे जीवोंके साथ सारे दृश्योंके साथ गहरा सम्बन्ध है। और एक-दूसरेके सहारे हम टिके हुए हैं। इसलिए आकाशमें विचरनेवाले जिन प्रकाशमय तारागणोंके सहारे हम टिके हुए हैं उनका थोड़ा-बहुत परिचय हमें करना ही चाहिये।

आकाशका परिचय करनेका एक खास कारण भी है। हममें यह कहावत चलती है "दूरके ढोल सुहावने"। इस कहावतमें बड़ा सत्य भरा है। जो सूर्य दूर होनेके कारण हमारी रक्षा करता है उसी सूर्यके पास जाकर अगर हम बैठें तो उसी क्षण जलकर हम राख हो जायं। यही बात आकाशमें बसनेवाले दूसरे दिव्यगणोंके बारेमें भी सच है। हमारे पासकी अनेक चीजोंके गुण-दोष हम जानते हैं इसलिए कभी कभी हम उनसे ऊब जाते हैं, उनके दोषोंके स्पर्शसे हममें भी वे दोष आ जाते हैं। लेकिन आकाशमें रहनेवाले सूर्य चन्द्र नक्षत्र वगैरा देवगणोंके बस हम गुण ही जानते हैं। उन्हें छूनेमें हम कभी पहुंच ही नहीं, उनका परिचय हमें कभी नुकसान पहुंचा ही नहीं सकता। और इन देवोंका ध्यान धरते हुए अपनी कल्पना-शक्तिको हम नीतिका पोषण करनेवाले विचारोंकी मददसे जितना दूर तक ले जाना चाहें ले जा सकते हैं।

यह बात बिना किसी शंकाके कही जा सकती है कि आकाशके और हमारे बीच जितनी रुकावटें हम रखते हैं उतना ही नुकसान हम अपने शरीर मन और आत्माको पहुंचाते हैं। अगर हम कुदरती तरीकेसे जीवन बितायें तो चौबीसों घंटे आकाशके नीचे रह सकते हैं। ऐसा करना संभव न हो तो जितने अधिक समय तक हम आकाशके नीचे रह सकें उतने समय तक तो रहें। आकाश-दर्शन यानी तारागणोंका दर्शन तो रातमें ही हो सकता है। और उनका अच्छेसे अच्छा दर्शन लेटकर ही किया जा सकता है। इसलिए जो मनुष्य इस दर्शनका पूरा पूरा लाभ उठाना चाहता है उसे तो साथ आकाशके नीचे ही

सोना चाहिये। आसपास यदि ऊंचे मकान या पेड़ हों, तो वे हमें दर्शनमें रुकावट डालते हैं।

बालकों और बड़ोंको भी नाटक और उनके भीतर दिखाये जानेवाले दृश्य बहुत पसन्द आते हैं। लेकिन जिस नाटककी योजना कुदरतने हमारे लिए आकाशमें की है, उसकी बराबरी मनुष्यका रचा हुआ एक भी नाटक नहीं कर सकता। इसके सिवा नाटकघरमें हमारी आंखें बिगड़ती हैं, फेफड़ोंमें गन्दी हवा जाती है और हमारा चाल-चलन बिगड़नेकी भी बहुत संभावना रहती है। इसके खिलाफ कुदरतके नाटकको देखनेमें तो लाभ ही लाभ है। आकाशके दर्शनसे आत्माको शांति मिलती है। आकाशका दर्शन करनेके लिए बाहर खुलेमें रहना अनिवार्य है, इससे हमारे फेफड़ोंको शुद्ध हवा मिलती है। और आकाशका दर्शन करनेसे किसीका चाल-चलन बिगड़ा हो, ऐसा आज तक कभी सुना नहीं गया। ज्यों ज्यों हम ईश्वरके इस चमत्कारका अधिक ध्यान करते हैं, त्यों त्यों हमारी आत्माका अधिक विकास होता है। जिसे रोज गन्दे विचार और गन्दे सपने रातमें आते हों, वह बाहर खुलेमें सोकर आकाश-दर्शनमें लीन होनेका प्रयत्न करके देखे। उसे तुरन्त निर्दोष निद्राका अनुभव होगा। जब हम आकाशके इस महादर्शनमें लीन हो जाते हैं तब हमें ऐसा सुनाई पड़ता है मानो आकाशके ये सब नक्षत्रगण ईश्वरकी मूक स्तुति कर रहे हैं। जिसके पास आंखें हों वह आकाशमें होनेवाला यह नित-नया नाच देखे। जिसके पास कान हों वह इन असंख्य गंधर्वोंका मूक गान सुने।

अब हम आकाशकी थोड़ी पहचान करें, अथवा मैंने आकाशका जो बहुत ही थोड़ा ज्ञान प्राप्त किया है उसमें मैं सब साथियोंको साझेदार बनाऊं। सच तो यह है कि पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र वगैराका थोड़ा सामान्य ज्ञान प्राप्त करनेके बाद ही आकाशका दर्शन किया जाय तो ठीक होगा। हो सकता है कि मैं यहां जो कुछ लिखनेवाला हूं वह सब काकासाहब कालेलकरके परिचयमें आये हुए आश्रमके बालक जानते हों। ऐसा हो तो अच्छा ही माना जायगा। मैं तो आश्रमके बाल-वृद्ध, नवयुवक सभी लोगोंके लिए यह लिख रहा

हूं। इसमें जिसे रस आयगा उसके लिए तो यह बिल्कुल आसान हो जायगा।

प्रार्थनाके तुरंत बाद आकाश-दर्शन करना अच्छा है। इसके लिए बीस मिनटसे अधिक समय एकसाथ देनेकी जरूरत नहीं है। समझदार आदमी तो इस दर्शनको प्रार्थनाका एक हिस्सा ही मानेगा। घरसे बाहर सोनेवाले अकेले आदमी जितने समय तक आकाशका ध्यान करना चाहें कर सकते हैं। कुछ ही समयमें इस ध्यानमें लीन होकर वे सो जायंगे। रातमें कभी नींद खुल जाय तो फिर थोड़ा दर्शन कर लें। आकाश हर पल घूमता दिखाई देता है इसलिए पल पल पर उसका दृश्य बदलता ही रहता है।

आठ बजे आकाशकी ओर देखनेसे पश्चिममें एक भव्य सुन्दर आकृति दिखाई पड़ेगी।

पूर्व

दक्षिण उत्तर

पश्चिम

यह आकृति पश्चिममें रहेगी। मैं पूर्वमें सिर रखकर सामने देखता हूं। इस तरह जो देखेगा वह इस आकृतिको कभी भूल ही नहीं सकेगा। आजकल शुक्ल पक्ष चल रहा है इसलिए यह तारा-मंडल और दूसरे तारागण थोड़े फीके दिखाई देते हैं। फिर भी यह तारा-मंडल इतना तेज है कि मेरे जैसे मानने वालेको इसे खोजना बहुत आसान लगता है। इस मंडलके बारेमें हमारे देशमें और यूरोपमें क्या मान्यता थी यह आगे लिखूंगा। इस समय तो इतना ही कहूंगा कि इस तारा मंडलका ब्यौरेवार वर्णन वेदमें पढ़ कर लोकमान्य तिलक महाराज वगैरह

समयकी खोज कर सके थे। आश्रममें पुस्तकालयका जो संग्रह है उसमें स्व० दीक्षितकी लिखी एक पुस्तक है। उसमें आकाशके नक्षत्रों तारागणों वगैराके बारेमें बहुत जानकारी दी गई है। मेरा काम सिर्फ इस बारेमें आश्रमवासियोंकी दिलचस्पी पैदा करना है। बादमें तो आश्रमवासियोंसे मुझे ही अधिक जाननेको मिलेगा। मेरे लिए आकाशके ये नक्षत्र ईश्वरके साथ सम्पर्क साधनेके साधन बन गये हैं। आश्रमवासियोंके लिए भी ऐसा ही हो।

यरवडा मंदिर
११-८-३२

२

पिछले सप्ताह मैंने जिस तारामंडलका चित्र दिया था उसके बारेमें अनेक कल्पनायें की गई हैं। इस मंडलके जितने चित्र तैयार किये गये हैं उनमें से एक भी सम्पूर्ण नहीं है। चित्रोंमें जितने तारे बताये गये हैं उनसे कहीं ज्यादा तारे इस मंडलमें हैं। इसलिए सबसे अच्छा यह होगा कि हर आश्रमवासी अपना अपना चित्र बनाये और ज्यों ज्यों आँखोंसे जितने तारे देखे उन्हींका निशान चित्रमें लगाये। ऐसा करनेसे तारोंको पहचाननेकी शक्ति एकदम बढ़ जायगी और नक्शोंमें जो चित्र दिये जाते हैं उनके बजाय खुदका बनाया हुआ चित्र हरएकके लिए उत्तम होगा। यद्यपि अलग अलग स्थानोंसे तारामंडलका दर्शन करने पर दृश्यमें थोड़ा फर्क तो पड़ता ही है। हर आश्रमवासी एक निश्चित किये हुए स्थानसे और निश्चित किये हुए समय पर ही तारोंका निरीक्षण करे तो ठीक होगा। यह सुझाव नक्शोंके बनानेके बारेमें और आकाशदर्शन शुरू करनेवालोंके लिए है। एक बार अच्छी तरह तारोंकी पहचान होने पर कोई कठिनाई नहीं पड़ती। हम चाहे जहाँ रहें तो भी अपने इन जगमगाते मित्रों या मित्रगणोंको हम तुरन्त पहचान लेंगे।

मृगशीर्ष अथवा हरिण हिन्दू नाम एक साम्प्रदायिक परम्परासे निकला है। अंग्रेजी ओरायन नाम भी निकला है। उन दोनोंमें

हर महीने दिखाई देनेवाले ऐसे मंडलका एक नक्शा छपता है। हिन्दु में हर महीनेके पहले सप्ताहमें और टाइम्स में दूसरे सप्ताहमें वह छपता है। कुमार[1] मासिकका सौवां अंक प्रकाशित होनेवाला है। उसके लिए भाई हीरालाल शाहने इस विषय पर लेख भेजे हैं। नक्शोंके विषयमें उनका अध्ययन गहरा मालूम होता है। ये लेख जिन्हें पढ़नेकी इच्छा हो वे पढ़ लें। मैं तो उन लेखोंके प्रकाशित होनेके बाद इस विषयमें ज्यादा नहीं लिखूंगा। मैं किस तरह आकाश-दर्शन कर रहा हूं इस बारेमें थोड़ी अधिक स्पष्टता यहां करूंगा। इससे आगे जाऊंगा तो सप्ताहमें दूसरी बात लिखनी रह जायगी। मौका आने पर या किसीके पूछने पर कुछ लिखूं यह दूसरी बात है।

जिस नक्षत्रका चित्र मैंने दिया था उसका नाम हमारे देशमें मृग या मृगशीर्ष है। इसी परसे महीनेका नाम मार्गशीर्ष — अगहन — पड़ा है। हमारे महीनोंके नाम नक्षत्रोंके नामोंके आधार पर पड़े हैं। मृग नक्षत्रको पश्चिममें ओरायन कहते हैं। वह पारधी माना गया है। उसके पूर्वमें दो सीधी लकीरोंमें जो बहुत तेज तारे हैं वे पारधीके कुत्ते हैं ऐसी कल्पना की गई है। पश्चिममें बड़ा कुत्ता है और उत्तरमें छोटा है। पूर्वकी ओर तथा दक्षिणमें पारधीके चौथे कोणके तारेके नीचे जो नक्षत्र दिखाई देता है उसको खरगोश माना गया है। कुत्ते उसकी ओर दौड़ते हैं। बीचमें जो तीन तारे हैं वे पारधीके कमर पट्टेके तीन हीरे हैं।

इस नक्षत्रकी ऐसी आकृतियां भी बनाई गई हैं। बड़े कुत्तेको हमारे यहां व्याध (शिकारी) कहते हैं और बीचके तीन तारे हरिणका पेट हैं। और उसके दक्षिणमें जो तारे हैं वे व्याधके छोड़े हुए बाणका निशान हैं। उत्तरकी ओर चौकोनके बाहर जो तीन तारे हैं वे हरिणका सिर हैं। यह सारी कल्पना मनोरंजक हो सकती है। इस कल्पनाके जन्मके बारेमें बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु उसमें से बहुत ही थोड़ा हिस्सा मैंने पढ़ा है।

---

१ अहमदाबादसे निकलनेवाला एक गुजराती मासिक।

लेकिन आकाशमें ऐसी आकृति बिलकुल है ही नहीं। ये तारे हमें जितने नजदीक दिखाई पड़ते हैं उतने नजदीक भी वे नहीं हैं। ये तारे असलमें तारे नहीं हैं परन्तु हमारे सूर्यसे भी ज्यादा बड़े सूर्य हैं। पृथ्वीसे करोड़ों मील दूर होनेके कारण आकाशमें वे छोटे छोटे बिन्दुओंकी तरह जगमगाते दिखाई देते हैं। इन सूर्योंके बारेमें हमें बहुत ही कम ज्ञान है। लेकिन आजसे अपढ़ आदमियोंके लिए भी ये तारागण मित्रका काम करते हैं। एक पलके लिए भी आदमी इन तारोंको देखे और मनमें संकल्प करे तो वह तुरन्त अपने सारे दुःख भूल जायगा और ईश्वरकी महिमाके गान गाने लगेगा। वह समझ जायगा कि ये तारागण ईश्वरके दूत हैं और सारी रात हमारी चौकी करते हैं और हमें ढाढ़स बंधाते हैं।

यह तो सत्य हुआ। तारे सूर्य हैं और हमसे बहुत दूर हैं — ये सब बातें बुद्धिके प्रयोग हैं। हमें ईश्वरकी ओर ले जानेमें उसका जो उपयोग है वह हमारे लिए पूरा सत्य है। विज्ञानकी दृष्टिसे पानीको हम अनेक तरहसे पहचानते हैं लेकिन उस ज्ञानका शायद कोई उपयोग नहीं करते। लेकिन पानी पीनेकी चीज है, शरीर साफ रखनेकी चीज है, यह ज्ञान और पानीका यह उपयोग हमारे लिए बहुत कामकी चीज है और उसका यही उपयोग हमारे लिए सत्य है। भले ही वास्तवमें पानी कोई दूसरा ही पदार्थ क्यों न हो और उसका इससे भी अधिक उपयोग क्यों न हो। यही बात तारोंको भी लागू होती है। तारोंके अनेक उपयोग हैं। मैंने तो तारोंका जो मुख्य गुण मुझे लगा उसी पर यहां विचार किया है और उसके अनुसार यहां उनका उपयोग बताया है। ऐसा ही कुछ पुराने समयमें कल्पना आयी मालूम होती है। समय पाकर अनेक प्रकारके दूसरे ज्ञान इसमें मिल गये हैं और अनेक तरहकी कहानियां पैदा हो गई हैं। यह सब आकाश-दर्शनका रस बढ़ानेके लिए हम जरूर पढ़ें। लेकिन मन लगाकर और तारोंका जो मूल उपयोग बताया है उसे हम न भूलें।

मृग नक्षत्रके उत्तरमें दूसरे दो तारा-मंडल हैं। उनको पहचान भी हम कर लें।

ध्रुव

दक्षिण

उत्तर

पश्चिम

इसमें बड़ा मंडल सप्तर्षि मंडल है। और छोटा मंडल ध्रुवमत्स्य कहलाता है। दोनों मंडलोंके लिए सात सात तारे दिये गये हैं लेकिन सप्तर्षि-मंडलमें दूसरे अनेक तारे हैं। वे टाइम्स और हिंदू में बताये गये हैं। ध्रुवमत्स्यमें दूसरे तारे नहीं दिखाई देंगे। इस शुक्ल पक्षमें तो शायद तीन ही दिखाई देंगे। दो चौकोनके और एक अंतिम सिरेका जिसका नाम ध्रुव है। यह एक ही तारा ऐसा है जो लगभग अचल रहता है और पहले तो इससे समुद्रकी यात्रामें मल्लाहोंको दिशा पहचाननेमें बड़ी मदद मिलती थी। ये दोनों मंडल ध्रुवके चारों ओर प्रदक्षिणा ही करते मालूम होते हैं। आजकल उनकी गति देखनेमें बड़ा आनंद आता है। सारी रात उनका स्थान बदला करता है। उनकी गतिका बतानेवाला नक्शा तैयार किया जाय तो उनके मार्गका एक सीधा वर्तुल—गोल घेरा—बन जायगा। इनमेंसे बड़े मंडलका

पश्चिममें बड़ा रीछ और छोटे मंडलको छोटा रीछ कहते हैं। एक पुस्तकमें मैंने इनके सुन्दर चित्र भी देखे हैं। इनके सिवा बड़े राक्षसकी वहां हलकी उपमा भी दी जाती है। सप्तर्षि मंडल तो रातमें घड़ीकी गरज पूरी करता है। थोड़ा अभ्यास पड़ जाय तो सप्तर्षिकी गतिसे समय जरूर जाना जा सकता है।

लेकिन अमूल्य होने पर भी इन मंडलोंके ये उपयोग और ये नाम मुझे मूल उपयोगके सामने बहुत मामूली जैसे लगते हैं। वह उपयोग है जैसा आकाश स्वच्छ है वैसे ही हम भी स्वच्छ बनें। जैसे तारे तेजस्वी हैं वैसे ही हम भी तेजस्वी बनें। वे जिस तरह ईश्वरका मूक स्तवन करते मालूम होते हैं उसी तरह हम भी ईश्वरका स्तवन करें। वे जिस तरह एक पलके लिए भी अपना मार्ग नहीं छोड़ते उसी तरह हम भी अपना कर्तव्य न छोड़ें।

यरवडा मन्दिर,
१८-८-३२

६

लेखा-जोखा निकालनेकी जरूरत

सत्याग्रह आश्रम (साबरमती) का इतिहास लिखते लिखते मनमें अनेक विचार आते हैं। हमारी अनेक कमियोंकी ओर ध्यान जाता है। इस वक्त मुझे लगा कि हमें समय समय पर अपने कामका लेखा जोखा निकालना चाहिये। व्यापारी अपने व्यापारका लेखा जोखा रोज निकालता है, हर महीने निकालता है, हर छह महीनेमें निकालता है और बड़ा लेखा जोखा हर साल निकालता है। हमारा व्यापार आध्यात्मिक माना जायगा, इसलिए हमें आध्यात्मिक लेखा जोखा निकालना होगा। हर आश्रमवासी अपना अपना लेखा-जोखा निकाले और समाज सारी संस्थाका निकाले। इस प्रकार अगर हम न करें तो जैसे व्यापारका लेखा जोखा न निकालनेवाले व्यापारीका आखिर दिवाला निकल जाता है वैसे ही हमारा आध्यात्मिक दिवाला निकल जाय। अपने सत्य अहिंसा

अस्तेय अपरिग्रह वगैरा व्रतो तथा अपने कार्योंमें हम आगे बढ रहे है या पीछे हट रहे है इसे अगर हम न जानें तो हम मशीनकी तरह जड़ बन जायगे और अतमें मशीनसे भी कम काम करेंगे। अर्थात् हम संस्थाको नुकसान पहुचायेंगे।

ऐसा लेखा जोखा कैसे निकाला जाय? इसका जवाब मै नीचे कुछ प्रश्न लिखकर दे सकता हू

१ क्या हम असत्यका विचार करते है असत्य बोलते है या असत्यका आचरण करते है? इससे मेरा मतलब हर आश्रमवासीसे है।

२ अगर ऐसा हो तो विचार वाणी और कर्मसे असत्यका आचरण करनेवाले कौन है? कहा कहा असत्य पैठा है? इसका उन्होंने क्या इलाज किया? आश्रमने क्या किया?

३ आश्रमके इतने वर्षके जीवनमें सत्यके विषयमें हम आगे बढे है या पीछे हटे है?

इसी तरह सारे व्रतोंके बारेमें विचार करके जहा जहा दोष दिखाई दें वहा वहा उन्हें दूर करनेके उपाय हमें खोजने चाहिये और उनसे लाभ उठाना चाहिये।

आश्रमके कार्योंके बारेमें भी ऐसा ही करना चाहिये। उनके बारेमें हमें दोहरा विचार करना होगा। पैसेकी दृष्टिसे इन कार्योंमें जमा और खर्च क्या एकसा आता है? हम ऐसा मानते है कि सामाजिक कार्योंमें अगर जमा-खर्चके दोनो पलडे बराबर आये तो यह कहा जा सकता है कि वे काय धर्मका खयाल रखकर किये गये होगे और अगर उनमें घाटा आये या नफा रहे तो कहा जायगा कि जरूर कही न कही नादानी — धर्मका — भंग हुआ है। हमारे कार्योंके सम्बन्धमें दूसरी दृष्टि यह है काम करनेमें मुख्य विचार धर्मका ही रखा गया है या नही? आश्रममें यह दृष्टि रखना आवश्यक है क्योंकि आश्रमके हमारे सारे काम धर्म अर्थात् सत्यके अधीन है।

व्रत और कार्य दोनोंके बारेमें नीचेके विचार मनमें उठे बिना नहीं रहते

१ आश्रममें ही एक-दूसरेके बीच छोटी छोटी चोरियां क्यों चलती हैं?

२ ऐसा समय कब और कैसे आयेगा जब हमें एक-दूसरेका अविश्वास रहेगा ही नहीं?

३ आश्रममें अभी तक बाहरसे चोर क्यों आते हैं?

४ हमारा व्यक्तिगत परिग्रह—जैसे साज-सामान वगैराका निजी संग्रह—अधिक क्यों है?

५ हमने आसपासके गांवोंसे अपना सम्बन्ध क्यों नहीं बांधा? यह सम्बन्ध कैसे बांधा जा सकता है?

६ आश्रममें अभी तक बीमारी क्यों रहती है?

७ आश्रमके मजदूर भाई-बहनोंके लिए हमने क्या किया है? वे आश्रमवासी क्यों नहीं बने हैं? अथवा आश्रममें मजदूर होने ही क्यों चाहिये? आश्रममें तो मजदूर और मालिकका कोई भेद ही नहीं होना चाहिये।

ऐसे दूसरे भी कई प्रश्न मैं बना सकता हूं। लेकिन मेरे विचारोंका खयाल देनेके लिए इतने प्रश्न काफी हैं। मैं चाहता हूं कि छोटे-बड़े सब आश्रमवासी इन प्रश्नों पर विचार करें। डायरी रखनेका मैंने जो आग्रह किया था उसमें एक यह हेतु तो था ही।

यरवडा मन्दिर
२५-४-'३२

७

राष्ट्रीय सप्ताहका सार

अप्रैल महीनेके राष्ट्रीय-सप्ताहके बारेमें भाई भगवानजी[1]का पत्र आया है। उसमें कपासके बिगाड़की ओर उन्होंने मेरा ध्यान खींचा है। और उन्हें शंका है कि कुछ लोगोंने कातते हुए तारोंकी संख्या जान-बूझकर अधिक लिखवाई है। बिगाड़ उन्होंने दो तरहका बताया है (१) टूटा हुआ सूत जितना होना चाहिये उससे बहुत ज्यादा है और (२) जल्दी जल्दी कातनेसे सूतका अंक बहुत नीचा रहा है।

अगर किसीने जान-बूझकर तारोंकी संख्या झूठी लिखवाई हो तो इसे मैं भयंकर दोष मानता हूँ। इससे आश्रमके नामको बट्टा लगेगा। झूठा लिखवानेवालेका यज्ञ ईश्वरकी बहीमें तो लिखा ही नहीं जायगा। हमारी बहीमें अमुक तार भले लिखवाये गये हों लेकिन असलमें उनकी कोई कीमत ही नहीं है। कीमत तो वास्तवमें जो हो वही सच्ची है। लिखनेसे उसमें कोई घटा-बढ़ी नहीं होती। और कातते हुए सूतकी कीमत तो कुछ आने ही होती है। सच्ची कीमत कातनेके पीछे रहनेवाले गूढ़ हेतुकी ही है। यह कीमत हम कभी आंक ही नहीं सकते। वह तो ईश्वरकी बहीमें ही आंकी जा सकती है क्योंकि मनुष्यके हेतुको कौन समझ सकता है? फिर भी हमारे पास एक नाप है। अगर अंतमें ऐसे यज्ञका सोचा हुआ परिणाम न आये तो मानना चाहिये कि हमारे भीतर कहीं न कहीं गंदगी है। इस दृष्टिसे सब अपने अपने कामका विचार करें और असत्य घुसा गया हो तो नम्रतासे उसे स्वीकार करके शुद्ध हो जायं। आश्रममें हम किसी पर छिपी चौकी नहीं कर सकते। ज्यादातर काम विश्वास पर ही चलता है। दूसरे किसी तरीकेसे आश्रम चल भी नहीं सकता। इसलिए आश्रममें सबको अपना धर्म समझ-बूझकर पालना चाहिये। पूरे तार

---

१ साबरमती आश्रमके एक भाई।

लिखावटके दोषके साथ ही दूसरे दोषोंका भी सब लोग विचार कर लें। कातनेमें किसीने आलस्य किया था? बेगार टाली थी? समयकी चोरी की थी? टूटा हुआ सूत फेंक दिया था? मतलब यह है कि यज्ञ करनेवाला मनुष्य उसमें एकरस हो जाय, काममें अपनी समूची होशियारी लगा दे।

कोई यह न माने कि सालभर चाहे जैसा काम करके राष्ट्रीय सप्ताहमें ऊपरके नियमोंका पालन कर लिया जायगा। इतना याद रखना चाहिये कि आश्रमका सारा जीवन ही यज्ञरूप होना चाहिये। उसमें भी चरखा चलाना — सूत कातना महायज्ञ है। राष्ट्रीय सप्ताहमें इतना ही फर्क होता है कि उन दिनों हम कताईके लिए ज्यादा समय देते हैं।

अब आगेके लिए मैं इतने नियम सुझाता हूँ:

१ बीस अंकसे कमका सूत यज्ञमें न माना जाय।

२ अमुक नियत की हुई मात्रासे अधिक बिगाड़ हो, तो ऐसा कता हुआ सूत यज्ञ न समझा जाय।

३ तय की हुई हदसे नीचे सूतका बल आये, तो ऐसा सूत भी यज्ञ न माना जाय।

यज्ञकार्यमें हो या दूसरे किसी काममें, संख्या अथवा वजनके बजाय कामकी सफाई और सचाईकी ही कीमत ज्यादा है। पचास अपाहिज बैल बेकार साबित होंगे, जब कि एक मजबूत बैल अपना काम अच्छी तरह करेगा। पचास भोथरे चाकू साग नहीं काट सकेंगे, लेकिन एक तेज चाकू पूरा काम करेगा। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि हम अपना ध्यान हर कामकी पूर्णताकी ओर लगायें। अगले राष्ट्रीय सप्ताहमें हम इसी बात पर ध्यान दें।

मैं देखता हूँ कि कुछ लोगोंकी कातनेमें रुचि नहीं होती। दूसरा काम वे ज्यादा पसन्द करते हैं। इसमें एक दोष तो स्वाभाविक है। मनुष्यको जो काम हमेशा करना पड़ता है उससे वह ऊब जाता है और अपने मनको यह कहकर फुसलाता है कि अगर दूसरा कोई काम करनेको मिलता तो वह ऊबता नहीं। लेकिन अगर कोई दूसरा काम उसका हमेशाका काम हो जाय तो फिर वह तीसरा काम मांगता। इसके सिवा

कातनेवालेका ध्यान जाने अनजाने कताईसे मिलनेवाली बहुत थोड़ी मजदूरीकी ओर भी जाता है। आश्रमकी दृष्टिसे यह दोष है। कातनेकी मजदूरी कमसे कम इसीलिए आंकी जाती है कि आज तो यही एक ऐसा काम है जिसे करोड़ों लोग कर सकते हैं और करके थोड़ा पैसा कमा सकते हैं। इस कारणसे कताईको व्यापक बनानेके लिए हम सब यज्ञके रूपमें कातते हैं। यज्ञके पीछे कल्पना यह है कि हम कोई काम ईश्वरको अर्पण करनेकी बुद्धिसे करते हैं और यह भरोसा रखते हैं कि खाना ईश्वर दे ही देगा। यह रहस्य सबको समझ लेना चाहिए और कताईका यज्ञ उसमें एकरस होकर प्रसन्न मनसे करना चाहिए।

यरवडा मंदिर
२-५-३२

८
सफाई, सचाई, पवित्रता और सुघड़ता

धीरू[1] जो मगन-चरखा लाया था उस पर आज मुझे सन्तोष हो इतना काबू मैंने पा लिया है। इसलिए मेरी इस चरखेके बारेमें दूसरी बातें करनेकी इच्छा हो आई है। वल्लभभाईकी तेज आंखोंने तो उस पर चढ़ा हुआ मकड़ीका एक जाला देख लिया और तुरन्त उन्होंने इसका मजाक भी किया। मणिबहन[2]की भारी सुघड़ताकी जड़ क्या है इसका मुझे यहीं आकर पता चला। जिन लिफाफोंमें मैं आश्रमकी डाक बन्द करता हूं वे सरकारकी सुघड़ताके नमूने होते हैं। जिन लोगोंने वे लिफाफे देखे न हों वे उन्हें देखें। उनमें सफाईके साथ भारी किफायतशारी भी होती है। यहांकी डाकके लिए बहुत लम्बे लिफाफोंकी जरूरत नहीं होती। इसलिए एक लम्बे

---

१ आश्रमका एक विद्यार्थी।
२ सरदार वल्लभभाई पटेलकी पुत्री।

लिफाफे दो बना लिये जाते हैं यह ध्यान देने जैसी बात है। पुड़ियों वगैरामें जो बादामी कागज आता है उसे संभाल कर रख लिया जाता है और उससे लिफाफोंकी नई तहें तैयार की जाती हैं।

यह तो मेरी प्रस्तावना हुई। कनुभाईने मकड़ीके जालेकी जो टीका की उस पर मैंने ध्यान तो दिया लेकिन मैं इस मगन-चरखेको चलानेके लिए बहुत अधीर बन गया था। चरखेको चलानेके लिए भी बायां हाथ काममें न लेनेकी बात डाक्टर बहुत ही कहते थे। इसलिए मैंने सोचा कि एक पावभर कातूं तो चरखेका काम एक दिनके लिए भी शायद बन्द नहीं रहेगा। और चरखे पर अपनी काबू पानेके जोशमें मैंने जालेकी बातको वैसा ही पड़ा रहने दिया। आज दाहिना हाथ काम करेगा ऐसी हिम्मत आ जानेसे चरखेके भागों पर मेरी नजर गई। एकके बजाय सात-आठ स्थानों पर मैंने जाले लगे हुए देखे। धूल तो सब जगह पड़ी ही थी। पीतलके मोढ़िये पर तेल और धूलका मरहम जमा हुआ था। बड़े और छोटे पहिया पर काफी मैल जम गया था। यह क्षमा करने लायक नहीं माना जा सकता। चरखा दरिद्र-नारायणका चक्र है। चरखा उनकी पूजाकी मुख्य सामग्री है। उस पर मैल चढ़ाकर हम दरिद्र-नारायणका अपमान करते हैं। सामान्य तौर पर मंदिरों मसजिदों गिरजाघरों वगैरा स्थानोंमें स्वच्छता रखी जाती है। हम तो यह मानते हैं कि हरएक स्थान ईश्वरका मंदिर है। एक भी स्थान ऐसा नहीं है जहां ईश्वर न हो। इसलिए हमारी दृष्टिमें तो सोनेका कमरा रसोईघर पुस्तकालय पाखाना—सभी मन्दिर हैं और मन्दिरकी तरह ही साफ-स्वच्छ रहने चाहिये। तब फिर चरखेके बारेमें तो कहना ही क्या जाय? अगर चरखेकी शक्तिमें सचमुच हमारा विश्वास हो तो चरखोंमें जरा भी कूड़ा हो तो कोई उसे साफ किये बिना नहीं रहेंगे।

हमारे यहांकी बिल्लीकी भलाईके बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूं। आजकल हम उन्हें अधिक ध्यानसे देख रहे हैं। बिल्लीने डेढ़ महीने पहले दो बच्चोंको जन्म दिया था। उनका रहन-सहन अनोखा लगता है। तीनों साथ ही कभी अलग दिखाई पड़ते हैं। सब बच्चे

दूध पीना चाहते हैं तब मां उन्हें दूध पिलाती है। दोनों बच्चे साथ चिपट कर ही दूध पीते हैं। वह दृश्य बड़ा सुन्दर मालूम होता है। माको इसमें कोई शरम नहीं लगती। बिल्ली अपने सब काम खुलेमें या हर जगह नहीं करती। बच्चे चलने और खेलने लगे कि तुरंत बिल्लीने उन्हें शौचके नियम सिखाये। उसने एकान्तमें नरम जमीन देखकर खड्डा किया। उस पर बच्चोंको बैठाया। बादमें धूलसे मलको अच्छी तरह ढककर जमीनको पहले जैसा बना दिया। अब दोनों बच्चे रोज इसी तरह शौच करते हैं। वे भाई-बहन हैं। चार दिन पहले उनमें से एक बच्चा जमीन खोदने लगा। लेकिन जमीन कड़ी थी। दूसरा उसकी मददमें पहुंच गया और दोनोंने मिलकर अपने लायक खड्डा खोद लिया। शौचकी क्रिया पूरी हो जानेके बाद जमीनको अच्छी तरह ढक कर दोनों रवाना हो गये। ऐसे प्राणी — छोटे और बड़े दोनों — जो काम कर सकते हैं उसे हम आसानीसे क्या नहीं कर सकते?

लेखकने नाममें चार शब्दोंका उपयोग मन एक ही भावको बतानेके लिए किया है। हमें आत्माका भान है इसलिए हमारी सफाई भीतरी और बाहरी दोनों प्रकारकी होनी चाहिये। लेकिन भीतरी सफाईका मतलब है सचाई। सचाई ही सबसे बड़ी पवित्रता है सचाईका ही मतलब सुघड़ता है। हम बाहरसे स्वच्छ और सुघड़ हों और अन्तर हमारा मला हो तो हमारी बाहरी सुघड़ता या तो निरा दिखावा है या ढोंग है या विषय भोगकी निशानी है। इसलिए संयमी स्त्री-पुरुषोंकी सुघड़ता अन्तरकी पवित्रताकी निशानी हो तो ही उसकी कीमत है।

हमारा महामन्दिर हमारा शरीर है। उसमें बाहरकी कोई गन्दगी हम न भरें। अपने मनको हम बुरे विचारोंसे मला न करें। इस स्वच्छताको साधनेवाला मनुष्य अपने हर काममें सुघड़ता बतायेगा। सुघड़ता उसका स्वभाव बन जाना चाहिये।

यरवडा मन्दिर

१-५-३२

९

अनोखा त्याग

कभी कभी मामूली पाठ्यपुस्तकोंमें से भी हमें मन पर गहरा असर करनेवाले बोध मिल जाते हैं। आजकल मैं उर्दूकी पाठ्य पुस्तकें पढ़ रहा हूं। उनमें कोई कोई पाठ बड़े सुन्दर आ जाते हैं। ऐसे एक पाठका मुझ पर तो बहुत गहरा असर पड़ा है। संभव है दूसरे लोगों पर भी उसका ऐसा ही असर पड़े। इसलिए नीचे मैं उसका सार देता हूं।

पैगम्बर मुहम्मद साहबके अवसानके कुछ ही बरस बाद अरबों और रोमनोंके बीच भयंकर लड़ाई छिड़ गई। उसमें दोनों ओरके योद्धा बड़ी संख्यामें मारे गये। बहुतसे घायल भी हुए। शाम होने पर आम तौर पर लड़ाई भी बन्द हो जाती थी। एक दिन जब इस तरह लड़ाई बन्द हुई तब अपनोंकी सम्भालका एक अरब योद्धा अपने चाचाके लड़केको खोजने निकला। वह ऐसा विचार करके निकला था कि अगर चाचाके लड़केकी लाश मिलेगी तो उसे दफना दूंगा और अगर वह जिन्दा मिलेगा तो उसकी सार-सम्भाल करूंगा। कहीं वह पानीके लिए न तड़प रहा हो ऐसा सोचकर इस योद्धाने अपने साथ पानीका एक लोटा भी भरकर रख लिया था।

दर्दके मारे तड़पते हुए घायल सैनिकोंके बीच वह लालटेन लेकर अपने भाईकी खोजमें घूमने लगा। एक जगह उसका भाई उसे पड़ा मिला। वह सचमुच ही पानीके लिए तड़प रहा था। उसके घावोंसे खून बह रहा था। उसके जीनेकी बहुत कम आशा थी। इतनेमें जिस अरब योद्धाने उसके पास पानीका लोटा रखा। इतनेमें किसी घायलकी पानी पानी की आवाज सुनाई पड़ी। इसलिए इस दयालु सिपाहीने अपने भाईसे कहा, "भाई, पहले तू उसे पानी पिला आ। फिर मुझे पिलाना।" जिस दिशासे पानी की पुकार आ रही थी उसी दिशामें तेज कदम उठाकर वह भाई पहुंचा।

यह घायल योद्धा एक बडा सेनापति था। सनिक सेनापतिको पानी देता है और सेनापति हाथ बढाकर पानी लेनका प्रयत्न करता है इतनमें तीसरी दिशासे पानीकी पुकार सुनाई पडी। यह सेनापति भी पहले घायल योद्धाकी तरह ही परोपकारी और दयालु था। इसलिए उसन मस्तिष्कसे कुछ बोलकर और कुछ इशारेसे पानी लानवाले योद्धाको समझाया कि पहले जहासे पुकार आई है वहा जाकर घायलको पानी पिला आओ। बचारा सनिक दुखकी आह भरता भरता हवाकी गतिसे वहा पहुचा जहासे पानीकी करुण पुकार आ रही थी। वह पहुचा ही था कि पानी पानी चिल्ला रहे घायल सनिकन आखिरी सास ली और सदाके लिए आखें बन्द कर ली। वह पानी पी नही सका। अब पानीवाला योद्धा दौडकर वहा पहुचा जहा सेनापति पडा कराह रहा था। पास जाकर देखा तो उसकी भी आखें बन्द हो चुकी थी। दुखी मनसे खदाकी बदगी करता करता वह अपन भाईके पास गया। देखा तो उसकी नाडी भी बन्द हो गई थी। उसके प्राण-पखरू उड गय थ।

इस तरह तीनामें से एक भी पानी पीकर अपनी प्यास नही बुझा सका। लेकिन पहले दो योद्धा अपना नाम अमर करके इस दुनियासे चले गय। इतिहासके पृष्ठोंमें एसे निर्मल शुद्ध त्यागके अनक उदाहरण दर्जनमें आत ह। उनके वणन भरी हुई कलमसे लिख गय हो तो हमारी आखासे दो बूद आसू भी टपक पडते ह। लेकिन ऊपरका अनोखा उदाहरण देनका मतलब तो यह है कि उन वीर पुरुषोंके जसा त्याग हममें पदा हो और हमारी परीक्षाका समय आय तब हम भी दूसरोंको पानी पिलाकर खुद पियें दूसरोंको जिलाकर खुद जियें और दूसरोंको जिलानके प्रयत्नमें अगर हमारे मरनका अवसर आय तो हम हसत हसत मृत्युकी गोदमें सो जाय।

मुझ लगता है कि पानीकी परीक्षास अधिक कडी परीक्षा सिर्फ हवाकी है। हवाके बिना तो आत्मा पलभर भी नही जी सकता। इसलिए सारा जगत हवास छाया हुआ मालूम होता है। लेकिन कभी एसा समय भी आता है जब पक्षीकी तरह एक छोटीसी कोठरीमें

बहुतसे आदमी बन्द हों, एक ही छेदमें से थोड़ी हवा कोठरीमें आती हो, वह हवा जिसे मिले वही जी सकता हो और दूसरे दम घुट जानेके कारण मर जायें। हम ईश्वरसे ऐसी शक्ति देनेकी प्रार्थना करें कि जब ऐसा समय आये तब हम खुद हवा न लेकर दूसरोंको हवा लेने दें।

हवाके दूसरे नंबर पर पानी है। पानीके एक प्यालेके लिए लोगोंको आपसमें लड़ते सुना गया है। हम यह कामना करें कि उस समय पाठके उन बहादुर अरब योद्धाओंका त्याग हममें पैदा हो। लेकिन ऐसी अग्नि-परीक्षा — बड़ी कसौटी — तो किसी बिरलेकी ही होती है। मामूली परीक्षा तो हम सबकी रोज ही होती है। हम सब अपने आपसे यह पूछनेकी आदत डालें: “जब कभी समय आता है तब हम रोज अपने साथियों और पड़ोसियोंको आगे करके खुद पीछे रहते हैं?” न रहते हों तो कहा जायगा कि हम परीक्षामें नाकाम हुए हैं, हमने अहिंसाका पहला पाठ भी नहीं सीखा है।

यरवडा मंदिर,
१५-५-'३२

१०
बिल्ली शिक्षिका

यहांकी बिल्लीकी सुघड़ताके बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूं। उसे और उसके बच्चोंको देखकर ऐसा लगता है कि बिल्ली एक अच्छी शिक्षिका है। बच्चोंको जो जो बातें सिखानी चाहियें वे सब वह माता बिना किसी धाक-धमकके और बिना कुछ बोले उन्हें सिखाती रहती है। सिखानेका उसका तरीका बिलकुल आसान है। बिल्ली जो कुछ बच्चोंको सिखाना चाहती है वह सब बच्चोंके देखते हुए स्वयं करके बता देती है। बच्चे तुरन्त वह काम करने लग जाते हैं। इसी तरह वे दौड़ना, पेड़ पर चढ़ना, समय पर उछलना, शिकार करना और अपने शरीरको चाट कर साफ रखना सीखे हैं। देखते ही देखते मां जितना जानती है वह सब बच्चे भी जान गये हैं।

मा अपने बच्चोंको ज्यादा समय तक अकेला नहीं छोड़ती। उसका प्रेम मनुष्यके प्रेम जैसा ही लगता है। वह बच्चोंको बगलमें लेकर सोती है। वे दूध पीना चाहते हैं तब सीधी लेट जाती है और बच्चोंको दूध पीने देती है। उसने कोई शिकार किया हो तो उसे बच्चोंके पास ले आती है। वल्लभभाई रोज उन्हें दूध पिलाते हैं। छोटीसी रकाबीमें से तीनों मा बेटे दूध पीते हैं। बहुत बार मा देखा करता है खुद दूधमें हिस्सा नहीं बटाती। वह बच्चोंके साथ बच्चोंकी तरह खेलती-कूदती है और कुश्ती लड़ती है।

इसमें से मैंने यह सार निकाला है कि अगर हम बालकोंको शिक्षा देना चाहें तो जो बात हम उनसे कराना चाहते हों वह हम खुद करके उन्हें बतायें। बालकोंमें अनुकरण करनेकी बहुत बड़ी शक्ति होती है। मुंहसे कही हुई बातको वे कम समझेंगे। अगर हम बालकोंको सत्यकी शिक्षा देना चाहें तो हमें खुदको बड़ी बारीकीसे सत्यका पालन करना चाहिये। उन्हें अपरिग्रहका पाठ — धन-दौलत तथा दूसरी चीजोंका संग्रह न करनेका पाठ — सिखाना हो तो हमें इन सबका संग्रह छोड़ देना होगा। जो बात नैतिक नियमोंके बारेमें सच है वही शरीर श्रमके कामोंके बारेमें भी सच है।

इस दृष्टिसे विचार करने पर हम तुरन्त समझ जायंगे कि आज जिस तरहसे बालकोंको शिक्षा दी जाती है उसका परिणाम धन और समयके खर्चकी तुलनामें बहुत कम आता है। इसके सिवा हम यह बात भी समझ सकते हैं कि बड़ी उमरके सब लोग शिक्षकके स्थान पर हैं। वे इस स्थानकी प्रतिष्ठाकी रक्षा नहीं करते इसीसे हमारी शिक्षाने हानिकारक रूप ले लिया है।

बिल्लीकी और दूसरे पशुओंकी बुद्धि नहीं होती या मनुष्यके जैसी बुद्धि नहीं होती। बिल्ली जो कुछ करती है उसके बनिस्बत हमें बहुत आगे जाना चाहिये। लेकिन ऐसा करना संभव हो इसके पहले भावी सन्तानकी नीति — सदाचार — के रक्षकके नाते हमें स्वयं नीतिका पालन करना चाहिये। हम भावी प्रजाको जो कुछ सिखाना चाहते हैं उसे पहले हमें खुद सीख लेना चाहिये।

आश्रमके शिक्षक और शिक्षिकायें तथा दूसरे आश्रमवासी इस दृष्टिसे विचार करने लगें और जरूरी हो वहां इसका अमल भी करने लगें इसी हेतुसे मैंने यह लिखा है।

यरवडा मंदिर
२२-५-३२

११

मृत्युसे मिलनेवाला सबक

जहां तक मुझे याद है आश्रममें आज तक सात आश्रमवासियोंकी मृत्यु हुई है: फकीरी, व्रजलाल, मगनलाल, सीता, भमजी भगत, इमाम साहब तथा गंगाबेन। (इन सबकी मृत्युकी तारीखें लिख रखना अच्छा होगा।)

फकीरीकी मृत्यु आश्रमकी शोभा बढ़ानेवाली नहीं मानी जा सकती। आश्रम तब नया ही था। आश्रमके संस्कार फकीरी पर नहीं पड़े थे। फिर भी फकीरी बहादुर बालक था। ध्यानमें अति करनेके कारण वह मौतका शिकार बना इसलिए मैंने उसकी टीका की है। उसकी मृत्यु मेरी बड़ी परीक्षा जैसी थी। मुझे याद आता है कि आखिरी दिन मैं ही रातभर उसके पास बैठा था। और सुबह मुझे गुरुकुल जानेके लिए गाड़ी पकड़नी थी। अर्थीको श्मशान तक पहुंचानेके बाद पत्थरका कलेजा बनाकर मैंने स्टेशनका रास्ता पकड़ा था। फकीरीके पिताने यह मानकर मुझे फकीरीको और उसके तीन भाइयोंको सौंपा था कि मैं फकीरी और आश्रमके दूसरे बच्चोंके साथ काम कर सकूं। फकीरी गया इसलिए उसके तीन भाइयोंको भी ले गये।

व्रजलाल बड़ी उमरमें सेवाके भावसे आश्रममें आये थे। सदा काम करते करते ही मृत्युसे भेंट करके वे अमर बने और आश्रमकी शोभा बढ़ा गये। एक बालकको पानीके कुएँमें से निकालनेके लिए वे नीचे उतरे थे। लेकिन रस्सीके सहारे बाहर आनेके पहले उनके

कारण वे रस्सी परसे फिसल गये और गहरी चोट लगनेके कारण उनके प्राण चले गये।

गीता गीताका पाठ सुनती हुई शांतिसे चली गई। मेघजी ऊधमी लड़का कहा जायगा लेकिन बीमारीमें उसने अनोखी शांति रखी। बालक अक्सर बीमारीमें बहुत परेशान होते हैं और अपने पास रहनेवालोंको भी परेशान करते हैं। मेघजीको लगभग आदर्श रोगी कहा जा सकता है। वसन्तने किसीकी सेवा ली ही नहीं — जानलेवा बुखारने एक या दो दिनमें ही उसकी जान ले ली। वसंतकी मृत्यु पंडितजी (खरे) और लक्ष्मीबहन (खरे) के लिए भारी कसौटी सिद्ध हुई। लेकिन दोनों उसमें से पार हो गये।

मगनलाल (गांधी) के विषयमें तो क्या कहा जाय? सच पूछा जाय तो यहां गिनती ऐसी मृत्युओंकी लगायी जा रही है जो आश्रममें हुई थीं। इसलिए मगनलालके नामको यहां स्थान नहीं मिलना चाहिये। लेकिन उनके नामको कैसे छोड़ा जाय? उन्होंने तो आश्रमके लिए ही जन्म लिया था। सोना जैसे आगमें तपता है वैसे ही मगनलाल सेवाकी आगमें तपे और सौ टंच शुद्ध सोना साबित होकर चल बसे। आश्रममें आज जो भी कुछ है वह सब मगनलालकी सेवाका प्रमाण पेश करता है।

इमाम साहबका एक ही मुसलमान परिवार अनन्य भक्तिसे आश्रममें बसा है। उनकी मृत्युने हमारे और मुसलमानोंके बीच कभी न टूटनेवाली स्नेहगांठ बांध दी है। इमाम साहब अपनेको इस्लामके नमूने जैसा मानते थे और उसी रूपमें आश्रममें आये थे। (यहां अमीनाके दो बच्चे याद आते हैं। वे बहुत छोटे थे इसलिए उनके बारेमें कुछ कहने जैसा नहीं है। लेकिन उनकी मृत्यु हमें संयमकी आवश्यकताका सबक जरूर सिखाती है।)

गंगादेवीका चेहरा आज भी मेरी आंखोंके सामने तैर रहा है। उनकी आवाजकी भनक मेरे कानोंमें पड़ रही है। उनके स्मरणोंको याद करके आज भी मैं थकता नहीं। उनके जीवनमें हम सबको और खास करके बहनोंको कई सबक सीखने हैं। वे लगभग अपढ़ थीं फिर

भी गानी थीं। हवा बदलनेके लिए जा सकती थी फिर भी वे अकेली ही ऐसी बहन थीं जो हमेशा जानेसे इनकार करती थी। जो बालक उनके हाथमें आये उनका गंगाबहनने अपने बच्चोंकी तरह पालन पोषण किया। मैं नहीं जानता कि उन्होंने किसी दिन किसीसे झगड़ा किया हो, या किसी पर कभी गुस्सा किया हो। उन्हें न तो जीनेकी खुशी थी न मरनेका डर था — उन्होंने हँसते हँसते मृत्युसे भेंट की थी। उन्होंने मरनेकी कला सीख ली थी। जिस तरह जीनेकी कला है उसी तरह मरनेकी भी कला है।

इन सब मृत्युओंका स्मरण मैंने हम सबकी जागृतिके लिए किया है। इस विश्व मंडलमें हमारी पृथ्वी एक कणके समान है। और उस कण पर हम देहरूपमें एक तुच्छ कणके समान हैं। हम किसी बिलमें रहनेवाली चींटियोंको गिननेमें असमर्थ हैं। चींटीसे छोटे जन्तुओंको हम अपनी आँखोंसे देख भी नहीं सकते। विराट पुरुषके सामने तो हम आँखोंसे देखे न जा सकनेवाले जन्तुओंसे भी छोटे हैं। इसलिए मनुष्यके शरीरको जो क्षणभंगुर — पल भरमें नाश पानेवाला — कहा गया है वह सोलहों आने सच है। उसका मोह किसलिए रखा जाय? उसके खातिर हम एक भी जीवको दुःख क्यों पहुँचायें? कांचसे भी कमजोर — ज्यादा जल्दी टूटनेवाले — इस शरीरको टिकानेके लिए इतनी दौड़धूप और धांधली हम क्यों मचायें? मौतका मतलब है इस शरीरमें से जीवका उड़ जाना। इस मौतका डर किसलिए रखा जाय? उसके समयको टालनेके लिए हम बड़े बखेड़ेमें क्यों पड़ा जाय? इन सब बातों पर बार बार विचार करके छोटे-बड़े सब लोग अपने मनसे मौतका डर निकाल डालें और शरीर टिका रहे तब तक उसमें रहकर सेवाके कामोंमें उसे घिस डालें। ऐसी तैयारी करनेकी शक्ति हममें पैदा हो इसीलिए हम रोज गीताके दूसरे अध्यायके अंतिम १९ श्लोकोंका रटन करते हैं। उनका रटन अगर हमारे हृदयमें घर कर ले तो हम देख सकेंगे कि जो कुछ हमें चाहिये वह सब इन श्लोकोंमें भरा हुआ है।

पुनश्च — यह लिख चुकनेके बाद महादेव शालिनी बहनकी और कस्तूरबा माताजीकी बात लिखते हैं। लेकिन मुझे जो सार निकालना

था उसमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए म लेखको इसी रूपम रहन देता हू। वसे इन तीनोकी मृत्युके विषयमें मन जो कुछ सुना है वह सब पवित्र स्मरण ही है।*

यरवडा मदिर
३०-५-३२

१२
तितिक्षा और यज्ञ

कोढ़के रोगसे पीड़ित एक भाई अपने पत्रम नीचेके विचार प्रकट करते ह

मेरा यह विश्वास दिनादिन बढ़ता जाता है कि मेरे जस रोगियोके लिए आसन प्राणायाम वगरा सामान्य नियामें और यज्ञ करनेके बाद प्राप्त किया हुआ अन्न इस रोगके लिए उत्तम चीज है। मेरा समय गीता उपनिषद् वगरा पढ़नेम भजन गानमें ईश्वरके ध्यानमें और कमसे कम ५० गज सूत कातनेमें बीतता है। हमारा धर्म तितिक्षाका गुण सिखाता है। और तितिक्षाका अर ... न दुखोको मनमें वि
तथा चिता ... बिना सहन
अ ... हू और बरदाश
... भी तरहका
। मेरे जसे
इसलिए
साफ करना
लए सुन्द
तबा

*

सहनशक्ति बढ़ाता हूँ। लेकिन बहुत बार यह विचार मनमें उठता है कि जब मेरा शरीर कोई भी परिश्रम करने लायक न रह जायगा तब क्या होगा? शास्त्र तो पुकार पुकार कर कहते हैं, आपने भी कई बार कहा और लिखा है तथा मैंने अनुभव भी किया है कि यत्नहीन जीवन मृत्युके समान है, पृथ्वी पर भाररूप है और समाजको कष्टमें डालनेवाला है। अब सवाल यह पैदा होता है कि मनुष्य इतना ज्यादा रोगसे घिर जाय कि उससे किसी प्रकारका यत्न हो ही न सके और अपने शरीरकी रक्षाके लिए उसे हर क्षण दूसरोंकी ही सेवा लेनी पड़े, तो ऐसे समयमें उसे क्या करना चाहिये? किसी धर्मशास्त्रमें मैंने यह भी पढ़ा है कि जब मनुष्यको ऐसा रोग हो जाय जिसका इलाज हो न हो सके तब उसे नदी तालाब वगैरामें डूबकर या अन्य किसी उपायसे प्राण छोड़ देने चाहिये।

यहां मैंने एक सुन्दर पत्रको अपनी भाषामें सार दिया है। इस पत्रमें से हम सबके लिए मैं इतना ही अर्थ निकालना चाहता हूँ कि इन भाईने जिस सहनशक्तिके बारेमें लिखा है वैसी सहनशक्ति हम सब अपने भीतर बढ़ायें और रोगके होते हुए भी शरीर काम दे तब तक यत्नशील हो रहें। सहनशक्ति बढ़ाना और यत्न करना — ये दोनों बातें बहुत पुरानी हैं। आश्रममें तो कदम कदम पर ये बातें हम सुनते हैं। लेकिन जब किसी अनुभवी मनुष्यके पत्रसे ऐसी बात हम तक पहुँचती है तब वह नई जैसी मालूम होती है। और उसमें बहुत बड़ी शक्ति भरी होती है। बाहरी कष्ट भोगनेवाले मनुष्योंसे हम ऐसी [illegible] और ऐसे अनुभवकी आशा नहीं रख सकते। अक्सर ऐसे मनुष्य जब कुछ लिखते हैं तब अपना दुःख ही रोते दिखाई देते हैं। लेकिन इस पत्रमें हम कोई अलग ही बात अनुभव करते हैं। इसीलिए इस पत्रका सार आश्रमवासियोंके लिए मैंने यहां लिख डाला है। पत्रमें जो शंका उठाई गई है उस पर भी हमें विचार करना चाहिये।

था उसमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मैं लेखको इसी रूपमें रहने देता हूं। वैसे इन तीनोंकी मृत्युके विषयमें मैंने जो कुछ सुना है वह सब पवित्र स्मरण ही है।*

यरवडा मंदिर
३-५-३२

१२
तितिक्षा और यज्ञ

कोढ़के रोगसे पीड़ित एक भाई अपने पत्रमें नीचेके विचार प्रकट करते हैं:

मेरा यह विश्वास दिनोंदिन बढ़ता जाता है कि मेरे जैसे रोगियोंके लिए आसन प्राणायाम वगैरा सामान्य क्रियायें और यज्ञ करनेके बाद प्राप्त किया हुआ अन्न इस रोगके लिए उत्तम चीज है। मेरा समय गीता उपनिषद् वगैरा पढ़नेमें भजन गानेमें ईश्वरके ध्यानमें और कमसे कम ५० गज सूत कातनेमें बीतता है। हमारा धर्म तितिक्षाका गुण सिखाता है। और तितिक्षाका अर्थ है समस्त दुःखोंको मनमें विरोध किये बिना तथा चिंता और रुदन किये बिना सहन करना। यह शक्ति मैं अपने भीतर बढ़ा रहा हूं और बढ़ाते बढ़ाते इस बातका अनुभव कर रहा हूं कि किसी भी तरहका यज्ञकार्य किये बिना यह तितिक्षा पैदा नहीं होती। मेरे जैसे आदमीसे कोई महान यज्ञकार्य तो नहीं हो सकते। इसलिए लोगोंके उपयोगमें आनेवाले रास्ते साफ करना मैला साफ करना और चरखा चलाना — ये मेरे ईश्वरकी कृपासे मेरे लिए खुले हैं और इन्हीं यज्ञकार्योंमें मैं आनन्द प्राप्त कर लेता हूं तथा अपने भीतर

* इस प्रकरणमें आये हुए सब नाम आश्रमवासियोंके हैं।

सहन शक्ति बनाता हूं। लेकिन बहुत बार यह विचार मनमें उठता है कि जब मेरा शरीर कोई भी यज्ञकार्य करने लायक न रह जायगा तब क्या होगा? शास्त्र ना पुराण पुकार कर कहते हैं आपने भी बहुत बार कहा और लिखा है तथा मैने अनुभव भी किया है कि यज्ञहीन जीवन मृत्युके समान है। पृथ्वी पर भाररूप है और संसारका बोझ बढ़ानेवाला है। अब सवाल यह पैदा होता है कि मनुष्य लाचार होकर रोगसे घिर जाय कि उससे किसी प्रकारका यज्ञ हो ही न सके और अपने शरीरका टिकाव रखनेके लिये उसे हर क्षण दूसरोंकी ही सेवा लेनी पड़े तो ऐसे समयमें उसे क्या करना चाहिये? किसी धर्मशास्त्रमें मैंने यह भी पढ़ा है कि जब मनुष्यको ऐसा रोग हो जाय जिसका इलाज ही न हो सके तब उसे तीर्थ स्थानमें डूबकर या अन्य किसी उपायसे प्राण छोड़ देने चाहिये।

यहां मैंने एक सुन्दर पत्रको अपनी भाषामें सार दिया है। इस पत्रमें से हम सबके लिए तो इतना ही अर्थ निकालना चाहता हूं कि इन भाईने जिस सहनशक्तिके बारेमें लिखा है वैसी सहनशक्ति हम सब अपने भीतर बढ़ायें और रोगी होते हुए भी शरीर बाहर उस सब तक सेवा करते हो सकें। सहनशक्ति बढ़ाना और यज्ञ करना —ये दोनों बातें बहुत पुरानी हैं। आश्रममें तो हम बरसोंसे यह बात हम सुनते हैं। लेकिन जब किसी अनुभवी मनुष्यकी कलमसे ऐसी बात हम तक पहुंचती है तब वह नई जैसी मालूम होती है। और उसमें बहुत बड़ी शक्ति भरी होती है। बाहरका बड़ा भाग ऐसे मनुष्योंसे सेवा लेनेकी और ऐसे अनुभवकी आशा नहीं रख सकता। अगर हम स्वस्थ जब दुःख लिखा है तब अपना दुःख हम रोज भुलाते हैं। लेकिन इस पत्रमें हम कोई अच्छी ही बात अनुभव करते हैं। खासकर इस पत्रका सार आश्रमवासियोंके लिए मैंने यहां दिया है। उसमें जो सवाल उठाई गई है उस पर भी हमें विचार करना चाहिये।

हमारी भावनाके अनुसार यज्ञका अर्थ है परोपकारके लिए हृदयसे किया जानेवाला कोई भी शारीरिक कर्म। लेकिन इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि जो आदमी शरीरसे कमजोर है वह यज्ञहीन है — वह यज्ञ नहीं करता। जो आदमी शरीरसे बिलकुल कमजोर होनेके कारण कोई शारीरिक कर्म न कर सके, वह अपनी मानसिक शक्तिसे अनेक तरहकी सेवा कर सकता है। और ऐसी सेवा अवश्य ही यज्ञ मानी जानी चाहिये। लेकिन ऐसी स्थितिकी कल्पना की जा सकती है कि जब इस प्रकारका कोई यज्ञ करने जितनी शुद्धि आदमीमें न हो, ऐसा स्वभाव न हो और फिर भी यज्ञकर्म करनेकी उसकी तीव्र इच्छा हो, अपने शरीरके बारेमें वह उदासीन बन गया हो, दूसरोंसे सेवा करानेमें उसे दुःख होता हो, और रोग प्राणघातक है इस बातका उसे विश्वास हो गया हो। ऐसी स्थितिमें मुझे लगता है कि जिसमें प्राणत्याग करनेकी शक्ति हो, उसे ऐसा करनेका पूरा अधिकार है। शायद यह भी कहा जा सकता है कि ऐसा करना उसका धर्म — कर्तव्य — है। लेकिन धर्म है ऐसा कहना सुननेवाले आदमीको आघात पहुंचानेवाला माना जा सकता है। प्राणत्याग करना दूसरोंका धर्म है यह वचन ज्ञानीके मुंहमें शोभा नहीं देता। और ऐसी बात सुननेवाला रोगी शायद घबरा भी जाय। लेकिन ऐसा अनर्थ होना यहां संभव नहीं है यह मानकर मुझे जो कुछ ठीक लगा वह अपनी मर्यादामें रहकर मैंने लिख डाला है। अनेक उपाय करने और बहुत सेवा लेनेके बाद भी जीनेकी तृष्णा — इच्छा — नष्ट हो और मृत्युका भय मिटे, मृत्यु हर तरहसे चाहने योग्य ही है। इसी दृष्टिको सामने रखकर मैंने लिखा है कि समझदार आदमी असाध्य रोग हो जाने पर प्राणत्यागको यदि अपना धर्म माने तो वह गलत काम ही करता है ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है।

यरवडा मन्दिर

९-६-३२

१३

प्रार्थना

प्रार्थना आश्रमका एक मूलभूत अंग है। इसलिए इसके महत्त्वको हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्रार्थना अगर मन लगाकर न की जाय तो सब क्रिया-कलाप बेकार है। भोजन करते समय अगर कोई आदमी सोता नहीं देखा जाता। प्रार्थना भोजनसे करोड़ गुनी अधिक लाभदायक है। प्रार्थनाके समय कोई सोय यह तो भारी दुःखकी बात मानी जायगी। प्रार्थना छूटने पर मनुष्यको बहुत दुःख होना चाहिये। भोजन चाहे छूट जाय लेकिन प्रार्थना नहीं छूटनी चाहिये। भोजन छोड़ना कभी कभी शरीरके लिए लाभदायक साबित होता है। लेकिन प्रार्थनाके छूटनेसे तो कभी लाभ हो ही नहीं सकता।

लेकिन जो आदमी प्रार्थनामें सोता है, आलस्य करता है, बातें करता है, सावधान नहीं रहता, विचारोंको अनेक स्थानों पर भटकने देता है, उसने प्रार्थना छोड़ी ऐसा ही कहा जायगा। प्रार्थनामें केवल शरीरसे हाजिर रहना दोष माना जायगा। जो आदमी केवल शरीरसे प्रार्थनामें हाजिर रहता है वह दोहरा दोष करता है, वह प्रार्थनाको छोड़ता है, और समाजको धोखा देता है। धोखा देनेका मतलब है असत्यका आचरण करना, सत्यव्रतका भंग करना।

लेकिन न चाहने पर भी नींद आये या आलस्य आये, तब क्या किया जाय? वास्तवमें ऐसी कोई बात है ही नहीं। अगर बिस्तरसे उठकर सीधे हम प्रार्थनामें चले जायँ तब तो नींद ही आयगी। लेकिन प्रार्थनामें जानेसे पहले हमें जाग्रत हो जाना चाहिये, दातुन करना चाहिये और ताजे व फुर्तीले रहनेका निश्चय करना चाहिये। प्रार्थनामें एक-दूसरेसे सटकर नहीं बैठना चाहिये, सीधे तनकर बैठना चाहिये, धीरे धीरे सांस लेनी चाहिये और उच्चारण अच्छी तरह करते जाय तो ऊँची आवाजसे नहीं तो मनमें जो श्लोक या भजन

हमारी भावनाके अनुसार यज्ञका अर्थ है परोपकारके लिए हृदयसे किया जानेवाला कोई भी शारीरिक श्रम। लेकिन इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि जो आदमी शरीरसे कमजोर है वह यज्ञहीन है — वह यज्ञ नहीं करता। जो आदमी शरीरसे बिलकुल कमजोर होनेके कारण कोई शारीरिक श्रम न कर सके वह अपनी मानसिक शक्तिसे अनेक तरहकी सेवा कर सकता है। और ऐसी सेवा अवश्य ही यज्ञ मानी जानी चाहिये। लेकिन ऐसी स्थितिकी कल्पना की जा सकती है कि जब इस प्रकारका कोई यज्ञ करने जितनी शक्ति आदमीमें न हो, ऐसा मनोबल न हो और फिर भी यज्ञकर्म करनेकी उसकी तीव्र इच्छा हो, अपने शरीरके बारेमें वह उदासीन बन गया हो, दूसरोंसे सेवा करानेमें उसे दुःख होता हो और रोग प्राणघातक है इस बातका उसे विश्वास हो गया हो। ऐसी स्थितिमें मुझे लगता है कि जिसमें प्राणत्याग करनेकी शक्ति हो उसे ऐसा करनेका पूरा अधिकार है — शायद यह भी कहा जा सकता है कि ऐसा करना उसका धर्म — कर्तव्य — है। लेकिन धर्म है ऐसा कहना सुननेवाले आदमीको आघात पहुंचानेवाला माना जा सकता है। प्राणत्याग करना दूसरोंका धर्म है यह वचन जाननेवालेके मुंहसे शोभा नहीं देता। और ऐसी बात सुननेवाला रोगी शायद घबरा भी जाय। लेकिन ऐसा अनर्थ होना यहां संभव नहीं है यह मानकर मुझे जो कुछ ठीक लगा वह अपनी मर्यादामें रहकर मैंने लिख डाला है। अनेक उपाय करने और बहुत सेवा लेनेके बाद भी जीनेकी तृष्णा — इच्छा — कम हो और मृत्युका भय मिटे यह हर तरहसे चाहने योग्य ही है। इसी दृष्टिको सामने रखकर मैंने लिखा है कि समझदार आदमी असाध्य रोग हो जाने पर प्राणत्यागको यदि अपना धर्म मान ले तो वह गलत काम ही करता है ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है।

यरवडा मंदिर
६–६–३२

१३

प्रार्थना

प्रार्थना आश्रमका एक मुख्यभूत अंग है। इसलिए इसके महत्त्वको हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्रार्थना अगर मन लगाकर न की जाय तो सब क्रिया-कलाप बेकार है। भोजन करते समय अक्सर कोई आलसी सोता नहीं देखा जाता। प्रार्थना भोजनसे करोड़ों गुनी अधिक लाभदायक है। प्रार्थनाके समय कोई सोये यह तो सारी दुःखकी बात मानी जायगी। प्रार्थना छूटने पर मनुष्यको बहुत दुःख होना चाहिये। भोजन चाहे छूट जाय लेकिन प्रार्थना नहीं छूटना चाहिये। भोजन छोड़ना कभी कभी शरीरके लिए लाभदायक साबित होता है। लेकिन प्रार्थनाके छूटनेसे तो कभी लाभ हो ही नहीं सकता।

लेकिन जो आदमी प्रार्थनामें सोता है, आलस्य करता है, बातें करता है, सावधान नहीं रहता, विचारोंको अनेक स्थानों पर भटकने देता है, उसने प्रार्थना छोड़ी ऐसा ही कहा जायगा। प्रार्थनामें केवल शरीरसे हाजिर रहना ढोंग माना जायगा। जो आदमी केवल शरीरसे प्रार्थनामें हाजिर रहता है वह दोहरा दोष करता है। वह प्रार्थनाको छोड़ता है और समाजको धोखा देता है। धोखा देनेका मतलब है असत्यका आचरण करना, सत्यके व्रतका भंग करना।

लेकिन न चाहने पर भी नींद आये या आलस्य आये तब क्या किया जाय? वास्तवमें ऐसा कोई सवाल है ही नहीं। अगर बिस्तरसे उठकर सीधे हम प्रार्थनामें चले जायं तब तो नींद ही आयेगी। लेकिन प्रार्थनामें जानेसे पहले हमें जाग्रत हो जाना चाहिये, दातुन करना चाहिये और ताजे व फुर्तीले रहनेका निश्चय करना चाहिये। प्रार्थनामें एक-दूसरेसे सटकर नहीं बैठना चाहिये, सीधे तनकर बैठना चाहिये, धीरे धीरे साफ बोलना चाहिये और उच्चारण अच्छी तरह करते जाय तो कभी सावधान नहीं तो मनमें जो श्लोक या भजन

हमारी भावनाके अनुसार यज्ञका अर्थ है परोपकारके लिए हृदयसे किया जानेवाला कोई भी शारीरिक कर्म। लेकिन इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि जो आदमी शरीरसे कमजोर है वह यज्ञहीन है — यह यज्ञ नहीं करता। जो आदमी शरीरसे बिलकुल कमजोर होनेके कारण कोई शारीरिक कर्म न कर सके वह अपनी मानसिक शक्तिसे अनेक तरहकी सेवा कर सकता है। और ऐसी सेवा अवश्य ही यज्ञ मानी जानी चाहिये। लेकिन ऐसी स्थितिकी कल्पना की जा सकती है कि जब इस प्रकारका कोई यज्ञ करने जितनी शुद्धि आत्मामें न हो, ऐसा मनोबल न हो और फिर भी यज्ञकर्म करनेकी उसकी तीव्र इच्छा हो, अपने शरीरके बारेमें वह उदासीन बन गया हो, दूसरोंसे सेवा करानेमें उसे दुःख होता हो, और रोग प्राणघातक है इस बातका उसे विश्वास हो गया हो। ऐसी स्थितिमें मुझे लगता है कि जिसमें प्राणत्याग करनेकी शक्ति हो उसे ऐसा करनेका पूरा अधिकार है, शायद यह भी कहा जा सकता है कि ऐसा करना उसका धर्म — कर्तव्य — है। लेकिन धर्म है ऐसा कहना सुननेवाले आदमीको आघात पहुंचानेवाला माना जा सकता है। प्राणत्याग करना दूसरोंका धर्म है यह वचन जीनेवालेके मुंहमें शोभा नहीं देता। और ऐसी बात सुनने वाला रोगी शायद घबरा भी जाय। लेकिन ऐसा भय होना यहां संभव नहीं है यह मानकर मुझे जो कुछ ठीक लगा वह अपनी मर्यादामें रहकर मैंने लिख डाला है। अनेक उपाय करने और बहुत सेवा लेनेके बाद भी जीनेकी तृष्णा — इच्छा — कम हो और मृत्युका भय मिटे यह हर तरहसे चाहने योग्य ही है। इसी दृष्टिको सामने रखकर मैंने लिखा है कि समझदार आदमी असाध्य रोग हो जाने पर प्राणत्यागको यदि अपना धर्म मान ले तो वह गलत काम ही करता है ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है।

यरवडा मन्दिर
१-६-३२

१३

प्रार्थना

प्रार्थना आश्रमका एक मूलभूत अंग है। इसलिए इसके महत्त्वको हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। प्रार्थना अगर मन लगाकर न की जाय तो सब किया-कराया बेकार है। भोजन करते समय अक्सर कोई आलसी सोता नहीं देखा जाता। प्रार्थना भोजनसे करोड़ गुनी अधिक लाभदायक है। प्रार्थनाके समय कोई सोय यह तो सारा दुःखकी बात मानी जायगी। प्रार्थना छूटने पर मनुष्यको बहुत दुःख होना चाहिये। भोजन चाहे छूट जाय लेकिन प्रार्थना नहीं छूटनी चाहिये। भोजन छोड़ना कभी कभी शरीरके लिए लाभदायक साबित होता है। लेकिन प्रार्थनाके छूटनेसे तो कभी लाभ हो ही नहीं सकता।

लेकिन जो आदमी प्रार्थनामें सोता है आलस्य करता है, बातें करता है सावधान नहीं रहता विचारोंको अनेक स्थानों पर भटकने देता है उसने प्रार्थना छोड़ दी ऐसा ही कहा जायगा। प्रार्थनामें केवल शरीरसे हाजिर रहना ढोंग माना जायगा। जो आदमी केवल शरीरसे प्रार्थनामें हाजिर रहता है वह दोहरा दोष करता है वह प्रार्थनाको लजाता है और समाजको धोखा देता है। धोखा देना मतलब है असत्यका आचरण करना सत्यव्रतका भंग करना।

लेकिन न चाहने पर भी नींद आवे या आलस्य आवे तब क्या किया जाय? वास्तवमें ऐसी कोई बात है ही नहीं। अगर बिस्तरसे उठकर सीधे हम प्रार्थनामें चले जाय तब तो नींद हो आयगी। लेकिन प्रार्थनामें जानेसे पहले हमें सावधान हो जाना चाहिये दातुन करना चाहिये और ताजगी व स्फूर्ति रखनेका निश्चय करना चाहिये। प्रार्थनामें एक-दूसरेसे सटकर नहीं बैठना चाहिये सीधा तनकर बैठना चाहिये धीरे धीरे सांस लेनी चाहिये और उच्चारण अच्छी तरह करते जाय तो ऊँची आवाजमें नहीं तो मनमें जो श्लोक या भजन

गाये जायें उन्हें गाना चाहिये। यह भी न आये तो रामनाम लेना चाहिये। इस सबके बावजूद अगर हमारा शरीर वशमें न रहे तो खड़े रहना चाहिये। बड़े हों या छोटे किसीको भी ऐसा करनेमें शरमाना नहीं चाहिये। शरम मिटानेके लिए कभी कभी नींद न आने पर भी बड़े लोग खड़े रहें।

प्रार्थनामें जो श्लोक या भजन गाये जाते हैं उन्हें सबको तुरंत समझ लेना चाहिये। संस्कृत समझमें न आये तो भी श्लोकोंका अर्थ तो जान ही लेना चाहिये और उस अर्थका मनन करना चाहिये।

यरवडा मंदिर
१९-६-३२

१४
अहिंसाका पालन कैसे हो?

सांपको मारा जा सकता है या नहीं? स्त्री पर बलात्कार करनेवाले व्यभिचारीको मारा जा सकता है या नहीं? खेतमें हल चलानेसे जीव-जन्तु मरते हैं यह जानते हुए भी हल चलाया जा सकता है या नहीं? — ऐसे सवालोंको हल करनेकी झंझटमें अहिंसाका उपासक न पड़े। मैं उलझनमें जब सुलझनी होगी तब अपने आप सुलझ जायगी। इन सवालोंकी भूलभुलैयामें फंसनेका भय है स्वयं अहिंसाको भूल जाना।

जिसे अहिंसाका पालन करनेकी लगन है वह अपने हृदयमें पैठ कर देखे और आसपासके पड़ोसियोंको देखे। अगर मनमें वैर भरा हो तो वह समझ ले कि उसने अहिंसाकी पहली सीढ़ी पर भी कदम नहीं रखा है। अगर वह अपने पड़ोसियों और साथियोंके साथ अहिंसाका पालन न करता हो तो कहा जायगा कि अहिंसासे वह हजारों कोस दूर है।

इसलिए ऐसा आदमी रोज सोते समय अपने-आपसे पूछे : क्या मैंने अपने साथीका अपमान किया? उसे बुरी खादी देकर मैंने अच्छी खादी ली? उसे कच्ची रोटी देकर मैंने पक्की रोटी ली? मैंने कामचोरी करके अपने साथी पर कामका बोझ डाला? वह इस तरह भी विचार करे : 'आज मेरा पड़ोसी बीमार था, लेकिन मैं उसकी सार-सँभाल करने नहीं गया। आज प्यासे राहगीरने मुझसे पानी माँगा, लेकिन मैंने उसे पानी नहीं पिलाया। आज जो मेहमान आये उन्हें मैंने प्रणाम नहीं किया। आज मैंने मजदूरका अपमान कर लिया, उस पर किसी तरहका विचार किये बिना मैं काम लादता रहा, बच्चा मैं इतना माँगता ही रहा, रसोईघरमें भात कच्चा रह जानेसे मुझे गुस्सा आ गया।' इन सब बातोंमें बहुत बड़ी हिंसा है। ऐसे रोजके बरतावमें हम स्वाभाविक रूपमें ही अहिंसा धर्मका पालन न करें, तो दूसरी बातोंमें उसके पालनकी योग्यता हममें आ ही नहीं सकती। अथवा दूसरी बातोंमें हम अहिंसा धर्मका पालन करते हों, तो भी उसकी बहुत कम कीमत है या बिलकुल कीमत नहीं है। अहिंसा तो हर पल और हर क्षण काम करनेवाली एक प्रचंड शक्ति है। उसकी परीक्षा हमारे हर पलके काममें और हर पलके विचारोंमें होती रहती है। जो मनुष्य अपनी पाईकी चिन्ता करता है, उसका रुपया सुरक्षित हो रहता है। लेकिन जो पाईकी परवाह नहीं करता वह पाई तो खोता ही है और रुपया कभी उसका हो ही नहीं सकता।

परंधाम मंदिर,
२५-६-'४२

सत्यका पालन कैसे हो?

जो बात अहिंसाको लागू होती है वही सत्यको भी होती है। गायको बचानेके लिए असत्य — झूठ — बोला जा सकता है या नहीं ऐसी उलझनमें पड़कर हमारी आंखोंके सामने रोज रोज जो कुछ होता है उसे भूल कर सत्यकी साधना नहीं हो सकती। इस तरह गहरे पानीमें उतरनेका मतलब है सत्यको ढक देना। आज जो समस्यायें प्रतिदिन हमारे सामने खड़ी होती हैं उनमें अगर हम सत्यका पालन कर तो फिर कठिन मौकों पर सत्यका पालन कैसे किया जाय इसका रास्ता हमें अपने-आप मिल जायगा।

इस दृष्टिसे हममें से हरएकको केवल अपनी ओर ही देखना है। क्या अपने विचारसे मैं किसीको धोखा देता हूं? अगर मैं क को बुरा मानता होऊं और उससे कहूं कि वह अच्छा है तो मैं उसे धोखा देता हूं। क्या मैं ज्ञानी या अच्छा कहलानेकी इच्छासे मुझमें न हो ऐसे गुण दूसरोंको बतानेका प्रयत्न करता हूं? क्या मैं किसी बातको बढ़ा चढ़ाकर कहता हूं? किये हुए दोष जिसके सामने प्रकट कर देना चाहिये ऐसे आदमीसे क्या मैं वे दोष छिपाता हूं? अपने साथी या अधिकारी जब कोई बात मुझसे पूछते हैं तब मैं जवाब देते समय क्या उनकी बातको टाल देता हूं? बताने जैसा उनसे कुछ छिपाता हूं? इन बातोंमें से एक भी बात अगर मैं करता होऊं तो क्या मैं असत्यका आचरण करता हूं? इस प्रकार हरएक आश्रमवासीको रोज अपने कामका हिसाब खुद लेकर अपने आपको सुधारना चाहिये। जिसे सत्यका आचरण करनेकी ही आदत पड़ गई हो या ऐसी स्थितिको पहुंच गया है कि असत्य वचन उसके मुंहसे कभी निकल ही न सके वह चाहे तो रोज सदस ऐसा हिसाब न मांगे। लेकिन जिसमें जरासा भी असत्य हो या जो प्रयत्न करके ही सत्यका आचरण कर सके उसे तो ऊपर

बताये अनुसार रोज इन प्रश्नोंका या ऐसे जितने सूझें उतने प्रश्नोंका उत्तर अपने आपको देना चाहिये। इस तरह जो एक महीना भी करेगा उसे तुरन्त अपनेमें हुआ परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देगा।

यरवडा मंदिर
३-३-'३२

१६

विद्याभ्यास

सत्याग्रह आश्रमका इतिहास लिखते लिखते शिक्षाके सम्बन्धमें जो विचार मेरे मनमें खास तौर पर उठते रहते हैं उनका सार आज मैं यहां दे रहा हूं। आश्रममें कुछ लोगोंको विद्याभ्यासकी — यानी किताबी शिक्षाकी — कमी मालूम होती है। मैं भी इस कमीको समझ सकता हूं। लेकिन शायद यह कमी तो आश्रमके साथ सदा जुड़ी ही रहेगी। इसके कारणोंकी मैं इस समय चर्चा नहीं करूंगा।

यह कमी हमें इसलिए मालूम होती है कि हमने विद्याभ्यासका सच्चा अर्थ नहीं समझा है और उस अर्थका विद्याभ्यास प्राप्त करनेका तरीका नहीं जाना है। या हम ऐसा मानकर चलते हैं कि शिक्षाकी मौजूदा पद्धति बिल्कुल ठीक है। मेरी दृष्टिसे आजकी शिक्षा — विद्याभ्यास — और उसके लक्ष्य और उसकी पद्धति दोनोंमें बड़ा दोष है।

सच्चा विद्याभ्यास वह है जिसकी मददसे हम अपना आत्माको, स्वयं अपनेको, ईश्वरको और सत्यको पहचान सकें। इस पहचानके लिए किसीको साहित्यके ज्ञानकी जरूरत हो सकती है, किसीको भौतिक विज्ञानकी जरूरत हो सकती है और किसीको कलाकी जरूरत हो सकती है। परन्तु हर प्रकारकी विद्याका ध्येय आत्मज्ञान होना चाहिये। आश्रममें जो विद्याभ्यास चलता है उसका यही ध्येय है। इसको ध्यानमें रखकर हम आश्रममें अनेक काम करते हैं। ये सब काम मेरे

अधम शुद्ध विद्याभ्यास है। आत्म दर्शनका हेतु न रखते हुए भी ये ही काम किये जा सकते हैं। परन्तु इस हेतुके बिना जब ये काम बलात् जाते हैं तब वे जीवन निर्वाहका या दूसरी किसी बातका साधन बन जाय लेकिन वे विद्याभ्यास नहीं है। विद्याभ्यासके पीछे समझदारी कर्तव्य-पालनकी लगन और सेवाकी भावना रहती है। और जहां समझदारी होती है वहां बुद्धिका विकास हुए बिना नहीं रहता। छोटेसे छोटा काम करते समय हमारे मनमें शुभ संकल्प होना चाहिये उस कामको करते हुए उसका कारण और उसका शास्त्र समझनेका हमारा प्रयत्न होना चाहिये। शास्त्र — विज्ञान — हर कामका होता है। खाना बनानेका सफाईका सुथारीका कताईका। जो आदमी विद्यार्थीकी दृष्टिसे हर काम करता है वह उसे कामका शास्त्र जानता है अथवा रचता है।

इतनी बात प्रत्येक आश्रमवासी समझ ले तो वह देखेगा कि आश्रम एक महाशाला है जिसमें एक निश्चित समय ही शिक्षाके लिए नहीं होता बल्कि सारे समय शिक्षाका कार्य चलता रहता है। ऐसा हर आदमी जो आत्म-दर्शन — सत्यदर्शन — की भावनासे आश्रममें रहता है शिक्षक भी है और विद्यार्थी भी है। जिस काममें वह कुशल है उसका वह शिक्षक है जो काम उसे सीखना है उसका वह विद्यार्थी है। जिस बातका हमें पड़ोसीसे अधिक ज्ञान हो वह अपने पड़ोसीको बिना हिचकिचाये हम सिखाते ही रहें और जिस बातका ज्ञान हमारे पड़ोसीका अधिक हो वह बात हम बिना किसी संकोचके उससे सीख लें। इस तरह ज्ञानका लेना-देना चलाते रहें तो हमें शिक्षकोंकी तंगी न रहे और शिक्षा सरल और स्वाभाविक बन जाय। ऊंचीसे ऊंची शिक्षा चरित्रकी है। जैसे जैसे हम यम नियमोंके पालनमें आगे बढ़ते जायंगे वैसे वैसे हमारी विद्या — सत्यका दर्शन करनेकी शक्ति — बढ़ती ही जायगी।

तब अक्षरज्ञानका साहित्यिक शिक्षाका क्या होगा? यह सवाल अब रहता ही नहीं है। जो बात दूसरे कामोंके लिए सच है वही अक्षरज्ञानके लिए भी सच है। ऊपर मैं ज्ञानके लेन-देनकी जो योजना

बनाई है उससे सब भ्रम दूर हो जाता है—वह भ्रम शालाके सवाल और शिक्षकोंसे निकट सम्बन्ध रखता है। हमारे भीतर अगर ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा पैदा हो तब हमें समझ लेना चाहिये कि यह ज्ञान हमें अपने ही प्रयत्नसे प्राप्त करना है। इसके लिए आश्रममें सहायता तो है ही। ऊपर लिखी अपनी बात अगर मैं सबको अच्छी तरह समझा सका होऊं तो अक्षरज्ञानकी समस्या हल हो जाती है। जिसके पास यह ज्ञान है वह दूसरोंको समय समय पर देता जाय और दूसरे उसे लेते जायं।

यरवडा मंदिर
१०-३-३२

१७

व्यक्तिगत प्रार्थना

व्यक्तिगत प्रार्थनाके बारेमें मैं पहले कुछ लिख चुका हूं। लेकिन उसके महत्वके बारेमें फिरसे कुछ लिखनेकी जरूरत मालूम होती है। मुझे लगता है कि सामूहिक प्रार्थनामें दिलचस्पी पैदा न होनेका एक कारण यह हो सकता है कि हमने व्यक्तिगत प्रार्थनाकी आवश्यकताको भलीभांति समझा नहीं है। व्यक्तिगत प्रार्थनामें से ही सामूहिक प्रार्थनाकी उत्पत्ति हुई है। व्यक्तिको अगर प्रार्थनाकी भूख न हो, तो समाजको कैसे हो सकती है? सामूहिक प्रार्थनाका उपयोग भी व्यक्तिके लाभके लिए ही है। सामूहिक प्रार्थना व्यक्तिको आत्मदर्शनमें—आत्मशुद्धिमें—मदद पहुंचाती है। इसलिए सबको व्यक्तिगत प्रार्थनाकी कीमत समझ लेनी चाहिये। बच्चा समझदार हुआ कि माता उसे ईश्वरकी प्रार्थना सिखाती ही है। सब धर्मोंके लिए यह साधारण बात है।

इस प्रार्थनाके दो समय तो स्पष्ट ही हैं। प्रातःकाल जागृत होते ही परमात्माको याद करना चाहिये और रातमें सोते समय भी उसे याद करना चाहिये। लगातार बीचके समयमें जाग्रत स्त्री और

पुरुष अपने हरएक कामके सम्बन्धमें भगवानको याद करेंगे और उसे अपने हर कामका साक्षी बनायेंगे। जो ऐसा करेगा वह बुरा काम तो कर ही नहीं सकता। और अन्तमें उसे ऐसी आदत पड़ जायगी कि वह अपने हर विचारका साक्षी और स्वामी ईश्वरको बनायेगा। यह स्थिति अपनेको शून्यवत् बना लेनेकी है। इस तरह जिसके सामने ईश्वर हमेशा मौजूद रहता है उसके हृदयमें हमेशा राम बसते हैं।

ऐसी प्रार्थनाके लिए किसी विशेष मन्त्र या भजनकी जरूरत नहीं रहती। यद्यपि हरएक क्रियाके आरम्भ और अन्तके लिए मन्त्र देखनेमें आते हैं लेकिन उनका होना जरूरी नहीं है। असल बात किसी भी नामसे किसी भी तरीकेसे और किसी भी हालतमें ईश्वरको याद करनेकी है। ऐसा करनेकी आदत बहुत थोड़े लोगोंको होती है। अनेक लोगोंको ऐसी आदत पड़ जाय तो दुनियामें पाप कम हो जाय मलिनता कम हो जाय और आपसका बरताव शुद्ध बन जाय। ऐसी शुभ स्थितिको पहुंचनेके लिए हर मनुष्यको मेरे बताये हुए दो समय तो प्रार्थनाके लिए रखने ही चाहिये दूसरे समयोंकी व्यवस्था भी वह स्वयं कर ले और हमेशा उसे बढ़ाता रहे जिससे अन्तमें उसकी हर सांसके साथ रामनाम निकलने लगे।

इस व्यक्तिगत प्रार्थनामें समय बिल्कुल नहीं जाता। उसके लिए समयकी जरूरत नहीं होती परन्तु जागृतिकी सावधानीकी जरूरत होती है। जैसे आंख मींचनेमें कोई समय जाता मालूम नहीं होता वैसे ही व्यक्तिगत प्रार्थनामें भी समय जाता मालूम नहीं होता। लेकिन जिस प्रकार आंखोंकी पलकें अपना काम करती हैं उसी प्रकार प्रार्थना हमारे हृदयमें चलनी चाहिये। ऐसी प्रार्थना करनेवालेको याद रखना चाहिये कि जिसका मन मैला है वह इस मैलेको रहने देकर प्रार्थना नहीं कर सकता। इसलिए प्रार्थनाके समय उसे यह मैल मनसे निकाल ही देना चाहिये। जिस प्रकार किसी मनुष्यके देखते हुए वह मैला काम करनेमें शरमायगा उसी प्रकार ईश्वरके सामने भी मैला काम करनेमें उसे शरम आनी चाहिये। लेकिन ईश्वर तो सदा हमारे हर कामको देखता है हमारे हर विचारको

जानता है। इसलिए एक भी क्षण ऐसा नहीं होता जब उससे छिपा कर हम कोई काम या विचार कर सकें। इस तरह जो सच्चे और शुद्ध हृदयसे प्रार्थना करेगा, वह अन्तमें ईश्वरमय बन जायगा — अर्थात् पापरहित हो जायगा।

यरवडा मन्दिर,
१७-७-'३२

१८

देखरेखकी जरूरत नहीं

यह शीर्षक सबको चौंकानेवाला है। ऐसा शीर्षक देकर मैं यह नहीं सुझाना चाहता कि आज हम देखरेखके बिना अपना कामकाज चला सकते हैं। लेकिन यहां मैं देखरेख कम करनेके और अन्तमें उसे बिलकुल खतम कर देनेके उपाय जरूर सुझाना चाहता हूं।

धार्मिक संस्थामें देखरेख करनेकी जरूरत पड़े तो समझना चाहिये कि उसमें धर्मकी उतनी कमी है। देखरेखके पीछे अविश्वासकी भावना रहती है। और अविश्वास धर्मका — आत्माका — नाश है। ईश्वर सबका रखवाला है। तब हम किस पर देखरेख करें? जिस आत्माने आश्रम बनानेका या चलानेका काम करनेकी जिम्मेदारी अपने सिर ली हो, वह खुद ही अपना काम अच्छी तरह क्यों न करे? वह अपना काम अच्छी तरह करेगा, ऐसा विश्वास हम क्यों न रखें? देखरेखके बिना जो आदमी लिया हुआ काम अच्छी तरह पूरा न करे, वह आश्रम छोड़ दे। उसका आश्रम छोड़ना सहन हो सकता है, लेकिन देखरेख तो सहन होनी ही नहीं चाहिये। हमारे रोजके कामका हिसाब ही हमारी देखरेख है।

यहां देखरेखका अर्थ हमें समझ लेना चाहिये। बालकोंकी देखरेख जरूरी होती है। उन्हें काम करना नहीं आता, इसलिए सौंपा हुआ काम कैसे किया जाय यह उन्हें बताना जरूरी होता है। यहां

पुरुष अपने हरएक कामके सम्बन्धमें भगवानको याद करेंगे और उसे अपने हर कामका साक्षी बनायेंगे। जो ऐसा करेगा वह बुरा काम तो कर ही नहीं सकता। और अंतमें उसे ऐसी आदत पड़ जायगी कि वह अपने हर विचारका साक्षी और स्वामी ईश्वरको बनायेगा। यह स्थिति अपनेको शून्यवत् बना लेनेकी है। इस तरह जिसके सामने ईश्वर हमेशा मौजूद रहता है उसके हृदयमें हमेशा राम बसते हैं।

ऐसी प्रार्थनाके लिए किसी विशेष मन्त्र या भजनकी जरूरत नहीं रहती। यद्यपि हरएक क्रियाके आरंभ और अंतके लिए मन्त्र देखनेमें आते हैं लेकिन उनका होना जरूरी नहीं है। असल बात किसी भी नामसे किसी भी तरीकेसे और किसी भी हालतमें ईश्वरको याद करनेकी है। ऐसा करनेकी आदत बहुत थोड़े लोगोंको होती है। अनेक लोगोंको ऐसी आदत पड़ जाय तो दुनियामें पाप कम हो जाय मलिनता कम हो जाय और आपसका बरताव शुद्ध बन जाय। ऐसी शुभ स्थितिको पहुंचनेके लिए हर मनुष्यको मेरे बताये हुए दो समय तो प्रार्थनाके लिए रखने ही चाहिये। दूसरे समयोंकी व्यवस्था भी वह खुद कर ले और हमेशा उन्हें बढ़ाता रहे जिससे अंतमें उसका हर सांसके साथ रामनाम निकलने लगे।

इस व्यक्तिगत प्रार्थनामें समय बिल्कुल नहीं जाता। उसके लिए समयकी जरूरत नहीं होती परन्तु जागृतिकी सावधानीकी जरूरत होती है। जैसे आंख मीचनेमें कोई समय जाता मालूम नहीं होता वैसे ही व्यक्तिगत प्रार्थनामें भी समय जाता मालूम नहीं होता। लेकिन जिस प्रकार आंखकी पलकें अपना काम करती हैं उसी प्रकार प्रार्थना हमारे हृदयमें चलनी चाहिये। ऐसी प्रार्थना करनेवालेको याद रखना चाहिये कि जिसका मन मैला है वह इस मैलको रहने देकर प्रार्थना नहीं कर सकता। इसलिए प्रार्थनाके समय उसे यह मैल मनसे निकाल ही देना चाहिये। जिस प्रकार किसी मनुष्यके देखते हुए वह मैला काम करनेमें शरमायगा उसी प्रकार ईश्वरके सामने भी मैला काम करनेमें उसे शरम आनी चाहिये। लेकिन ईश्वर तो सदा हमारे हर कामको देखता है हमारे हर विचारको

जानता है। इसलिए एक भी क्षण ऐसा नहीं होता जब उससे छिपा कर हम कोई काम या विचार कर सकें। इस तरह जो सच्चे और शुद्ध हृदयसे प्रार्थना करेगा, वह अन्तमें ईश्वरमय बन जायगा — अर्थात् पापरहित हो जायगा।

यरवडा मंदिर,
१७-७-'३२

१८

देखरेखकी जरूरत नहीं

यह शीर्षक सबको चौंकानेवाला है। ऐसा शीर्षक देकर मैं यह नहीं सुझाना चाहता कि आज हम देखरेखके बिना अपना कामकाज चला सकते हैं। लेकिन यहां मैं देखरेख कम करनेके और अन्तमें उसे बिलकुल खतम कर देनेके उपाय जरूर सुझाना चाहता हूं।

धार्मिक संस्थामें देखरेख करनेकी जरूरत पड़े तो समझना चाहिये कि उसमें धर्मकी उतनी कमी है। देखरेखके पीछे अविश्वासकी भावना रहती है। और अविश्वास धर्मका — आत्माका — घातक है। ईश्वर सबका साक्षी है। तब हम किस पर देखरेख करें? जिस आदमीने भोजन बनानेकी या पाखाना साफ करनेकी जिम्मेदारी अपने सिर ली हो वह खुद ही अपना काम अच्छी तरह क्यों न करे? वह अपना काम अच्छी तरह करेगा ऐसा विश्वास हम क्यों न रखें? देखरेखके बिना जो आदमी लिया हुआ काम अच्छी तरह पूरा न करे, वह आश्रम छोड़ दे। उसका आश्रम छोड़ना सहज हो जाता है। लेकिन देखरेख तो शुरू होनी ही नहीं चाहिये। हमारे रोजके कामका हिसाब ही हमारी देखरेख है।

यहां देखरेखका अर्थ हमें समझ लेना चाहिए। कामकी देखरेख जरूरी होती है। जिसे काम करना नहीं आता इसलिए सौंपा हुआ काम न । किया जाय यह उसे बताना जरूरी है। यहां

उमरवालोंमें भी जिन्हें अमक काम करते नहीं आता उनकी देखरेख रखना जरूरी होता है। ऐसी देखरेखकी वे इच्छा भी रखते हैं। सच पूछा जाय तो ऐसी देखरेख देखरेख नहीं है परन्तु शिक्षककी सहायता है। इस सहायताके बल पर नये सीखनेवाले लोग आगे बढ़ते हैं।

लेकिन जो देखरेख चौकीके रूपमें की जाती है जिसे काम सौंपा गया है वह अपना काम अच्छी तरह करता है या नहीं इसकी चौकी रखनेको की जाती है वह बुरी चीज है। बालकोंकी भी ऐसी चौकी ठीक नहीं है। इस दोषसे बाहर निकलनेका रास्ता हमें खोजना चाहिये।

इस खोजकी पहली सीढ़ी यह है जिन जिन कामों पर देखरेख रखी जाती है उन्हें नोट कर लेना चाहिये। उनमें कौन कौन आदमी काम करते हैं यह देख लेना चाहिये। उनके साथ कामके सम्बन्धमें बातचीत करके उनकी साख पर उन्हें छोड़ देना चाहिये। संस्थापकको और दूसरे लोगोंको इस बातका पूरा भान होना चाहिये कि ईश्वर सबसे बड़ा साक्षी है। बालकोंको भी आजसे ही ईश्वरकी हाजिरीका भान होना चाहिये। यह कोई वहमका अंधविश्वासकी बात नहीं है इसमें सन्देहकी भी गुंजाइश नहीं है। हम अपनी हस्तीका जितना विश्वास है उतना ही विश्वास रखनेकी यह बात है।

मेरे इस सुझाव पर सब लोग विचार करें। और जिस हद तक इस पर अमल करना संभव हो उस हद तक अमल करना हमारा धर्म है।

यरवडा मन्दिर
२४-७-३२

गीताको कठस्थ करो

गीताको कठस्थ करने — जबानी याद करनेके बारेमें मैं बहुत बार लिख चुका और कह चुका हूं। मैं खुद गीताको कठस्थ नहीं कर पाया हूं, इसलिए मुझे यह कहना शोभा नहीं देता। फिर भी बार बार यह बात कहनेमें मुझे शरम नहीं आती। क्योंकि मैं गीताको कठस्थ करनेका लाभ जानता हूं। मेरा काम अब तक चलता रहा है, क्योंकि मैंने एक बार तो तेरह अध्याय कठ कर लिये थे और गीताका मनन, गीतामें कही हुई बातोंका गहरा विचार तो मैं बरसोंसे करता रहा हूं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मेरा जीवन कुछ हद तक गीताकी छायामें बीता है। लेकिन अगर मैं पूरी गीता याद कर सका होता, गीताके वचनोंमें और भी गहरा उतर सका होता, तो संभव है मुझे आजसे कहीं ज्यादा लाभ मिलता। लेकिन मेरा तो जो हुआ सो हुआ या भविष्यमें भी जो होना हो सो होगा। मेरा समय तो अब बीत चुका माना जायगा या हम ऐसा मानें। यद्यपि मुझे आसानीसे मौका मिले तो मैं आज भी फिरसे गीताको कठ करनेका प्रयत्न शुरू कर दूं।

यहां हमें गीताका थोड़ा व्यापक अर्थ करना चाहिये। गीता अर्थात् हमारे जीवनका आधार बना हुआ ग्रंथ। हममेंसे बहुतोंका आधार गीता ही है, इसलिए मैंने गीताके नामका उपयोग किया है। लेकिन अमतुस्सलाम बहन या कुरैशी[1] साहबके बच्चेमें पूरा कुरान शरीफ या उसका कुछ भाग कठ कर लें। जिन्हें संस्कृत जरा भी नहीं आती जो अब गीता भी नहीं गाते वे गुजराती या हिन्दीका अर्थ याद कर लें। जिन्हें गीता पर श्रद्धा न हो परन्तु दूसरे किसी धर्मग्रन्थ पर हो वे उस धर्मग्रन्थको कठ करें।

साथ ही हमें कठ करनेका अर्थ भी स्पष्ट कर लेना चाहिये। जिस ग्रंथको हम कठ कर उसके आशयके अनुसार व्यवहार करनेका हमारा

१ आश्रमवासी।

आग्रह होना चाहिये। हमारा व्यवहार ग्रन्थमें दिये गये बुनियादी सिद्धान्ताके खिलाफ नहीं होना चाहिये। जिस ग्रन्थको या उसके जिस भागको हम कंठ करें उसका अर्थ हम अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

कंठ करनेका फल यह है हमारे पास यदि कंठ किया हुआ ग्रन्थ न हो वह चोरी चला जाय या जल जाय हम रास्ता चलते चलते भटक जायं हम अंध हो जायं हम बोल न सकें लेकिन हमारी समझनेकी शक्ति बनी रहे — एसी दूसरी बातोंकी भी कल्पना की जा सकती है — तब अगर हमारा प्रिय और जीवनका आधार बना हुआ ग्रन्थ हमें मुंहसे याद हो तो वह हमारे लिए बडी शांति देनेवाला रास्ता दिखानेवाला और मुसीबतका साथी बन जाता है।

सारे जगतका अनुभव भी एसा ही है। हमारे पुरखे — हिंदू मुसलमान ईसाई पारसी सब — कोई न कोई पाठ कंठ कर लेते थे। आज भी बहुतसे लोग एसा करते हैं। इन सबके अनमोल अनुभवकी हम उपेक्षा न करें। इसमें कुछ हद तक हमारी श्रद्धाकी परीक्षा होगी।

यरवडा मंदिर
३१-७-३२

२०

डॉ॰ प्राणजीवनदास मेहता

अगर मैं इस समय आश्रममें होता तो इस पुण्यात्माके विषयमें कुछ न कुछ कहता। डॉ॰ मेहता मेरे तो सबसे पुराने साथी माने जायेंगे। मैं विलायत (कानून पढ़ने) गया था तब मैं उनके सम्बन्धमें आया था। वह सम्बन्ध दिन दिन बढ़ता ही गया। विलायतमें सबसे पहली भेंट मेरी उन्हींके साथ हुई थी। और पहलेसे ही उन्होंने मुझे रास्ता दिखाना शुरू कर दिया था। लेकिन यह सब तो मेरी 'आत्मकथा'[1] में आया है। यहां मैं हम दोनोंके गहरे सम्बन्धके बारेमें नहीं लिखना चाहता। डॉ॰ मेहतामें ऐसे कौनसे गुण थे जिनकी वजहसे मैं उन्हें पुण्यात्मा — पवित्र पुरुष — मानता हूं? यह जाननेसे हम उनके गुणोंका अनुकरण कर सकेंगे और मनमें यह श्रद्धा रख सकेंगे कि वे जो कुछ अपने जीवनमें कर पाये वह हम भी कर सकते हैं।

डॉक्टर मेहताको ग्रांट मेडिकल कॉलेजका सुवर्ण-पदक मिला था। बादमें विलायत जाकर उन्होंने अधिक परीक्षायें पास कीं व बैरिस्टर बने, यह सब मैं छोड़ देता हूं। सब लोग विद्वान नहीं बन सकते। उसके लिए बाहरी परिस्थितियां अनुकूल होनी चाहिये। मनुष्य अपनी विद्याके कारण नहीं पूजे जाते परन्तु अपने अच्छे गुणोंके लिए पूजे जाते हैं। डॉक्टर मेहतामें मैंने दृढ़ता, धीरता, उदारता, पवित्रता, सत्य, प्रेम, अहिंसा, सादगी वगैरा गुण दिन दिन बढ़ते देखे हैं। कोई निश्चय कर लेनेके बाद उनका वह निश्चय किसी भी हालतमें बदलता नहीं था। इसलिए आमतौरपर लोग उनके वचनका विश्वास करते थे। डॉक्टर मेहता निर्भय बहुत थे। विलायतसे लौटने पर जब उन्होंने देखा कि

---

१ सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा — नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित।

अपने जन्मस्थान मोरवी (काठियावाड़) में वे अपने स्वाभिमानकी रक्षा नहीं कर सकते तब उन्होंने मोरवीको हमेशाके लिए छोड़ दिया।

डाक्टरकी उदारताका कोई पार ही नहीं था। उनका घर धर्मशाला बन गया था। दान पानेकी योग्यता रखनेवाला कोई गरीब उनके पाससे खाली हाथ नहीं लौटता था। उन्होंने अनेक लोगोंका पालन-पोषण किया था। डाक्टरके सारे दान बिना किसी आडंबरके होते थे। उन्होंने कभी अपने दानोंका ढिंढोरा नहीं पीटा। उनके दानोंके लिए जात पात या प्रान्तकी कोई मर्यादा नहीं रहती थी। हिन्दुस्तानके सारे प्रान्तोंको सारी कौमोंको और सभी धर्मवालोंको उनके दानका लाभ मिला था। डॉक्टरके पास धनका भण्डार भरा था लेकिन इसका उन्हें घमंड नहीं था। इस धनको अपने सुख और ऐश आरामके लिए उन्होंने कमसे कम काममें लिया था। कहा जा सकता है कि अपने विशाल बंगलेमें उन्होंने अपने लिए कमसे कम जगह रखी थी। अपने मौज शौकके लिए उन्होंने थोड़ा भी पैसा उड़ाया हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। मैं मानता हूं कि डाक्टरने एकपत्नी-व्रतका कड़ी दृढ़तासे पालन किया था। अनेक वर्षोंसे ब्रह्मचर्य उनका बहुत प्रिय विषय बन गया था।

जीवनके पहले कालमें डाक्टरको धर्म-पुस्तकें पढ़नेका शौक शायद ही रहा होगा। लेकिन बादमें यह शौक उनमें बढ़ा था। यहां मुझे उन्होंने जो पत्र लिखा था उसमें उन पुस्तकोंके नाम दिये थे जो वे पढ़ रहे थे। वे सब धार्मिक पुस्तकें ही थीं। जहां तक मैं जानता हूं डाक्टरने अपने व्यापारमें और एकान्तिक धर्ममें सत्यके व्रतका पालन किया था। मैं जानता हूं कि असत्य और दांभिकतासे वे बड़ी नफरत करते थे। उनकी अहिंसा उनके चेहरे पर लिखी रहती थी उनकी आंखोंमें साफ पढ़ी जा सकती थी और वह दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। वस्तुतः आत्माके रूपमें कोई मरता ही नहीं। लेकिन जैसे मनुष्य अपने गुणोंके बल पर विशेष अमर हो जाते हैं। आश्रमके साथ उनका जो गहरा सम्बन्ध था वह आश्रमकी धार्मिक वृत्तिका

धारण करनेवाला था। इस पुण्यात्माके जीवनसे हमें अपना चरित्र अनुसार सीखना चाहिये।

यरवडा मन्दिर
७-८-३२

२१
वाचन और विचार

१

हम शास्त्रोंमें मानते हैं कि विचारके बिना वाचन बेकार है। यह बात मुझे ठीक जान पड़ती है। इसमें पढ़नेका गौरव हो यह अच्छी बात है। जो लोग आलस्यकी वजहसे लिखना नहीं एक पुस्तकें नहीं पढ़ते वे मूर्ख कहे जायेंगे। लेकिन जो सिर्फ पढ़ते ही रहते हैं और विचार नहीं करते वे भी लगभग मूर्ख जैसे ही रहते हैं। इसके सिवा पढ़ते पढ़ते कुछ लोग आलसी बनते हैं या भ्रममें। ज्यादा पुस्तक पढ़ना एक मानसिक रोग ही माना जायगा।

इसमें निज लड़ाई करनेवाले बहुत लोग होते हैं। वे पढ़ते हैं लेकिन विचार नहीं करते। जब किसे पढ़े हुए पर अमल ना करे तो क्या करें? इसलिये थोड़ा ही पढ़ना चाहिये, उस पर विचार करना चाहिये और उसे आचरणमें उतारना चाहिये। आचरण करने पर जो बात ठीक न लगे उसे छोड़ देना चाहिये और आगे बढ़ना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य थोड़ा पढ़कर ज्यादा काम कर सकता है, बहुतसा समय बचा सकता है और नये काम करनेकी हिम्मत उसमें पैदा होती है।

सुविधा न मिलने पर पागल जैसे होते देखे गये हैं। लेकिन जिन्हें विचार करनेकी आदत पड़ जाती है उनके पास विचारोंकी पुस्तकें तो सदा मौजूद ही रहती हैं। इसलिए उनके पागल बननेकी नौबत कभी नहीं आती।

विचार करना सीखना चाहिये इन शब्दोंका प्रयोग मैंने जान बूझकर किया है। सच्चे-झूठे निकम्मे विचार तो बहुतेरे लोग किया करते हैं। लेकिन वह निरा पागलपन है। कुछ लोग विचारोंके भंवरमें फंसकर आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसे विचारोंकी बात मैं यहां नहीं कहता। इस समय तो मेरा सुझाव इतना ही है कि हम जो कुछ पढ़ें उस पर विचार करें। मान लीजिये कि आज आपने एक भजन सुना या पढ़ा। उस पर आपको विचार करना चाहिये। उसका रहस्य उसके भीतरका गूढ़ अर्थ क्या है उसमें से हमें क्या लेना चाहिये और क्या नहीं लेना चाहिये — इस बातकी आपको जांच करनी चाहिये। उसमें अगर कोई दोष हो तो उसे भी देखना चाहिये। उसका अर्थ समझमें न आया हो तो अर्थ समझ लेना चाहिये। यह सारी विचार करनेकी पद्धति कही जायगी। यह मैंने सरलसे सरल उदाहरण दिया है। इसमें से सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार दूसरी बातें सोचनेका मसाला निकाल लें और लाभ लें। ऐसा करनेवाले उत्तम आत्मानन्दका अनुभव करेंगे और वे जो कुछ भी पढ़ेंगे वह सब लाभकारी सिद्ध होगा।

यरवडा मन्दिर
१४–८–३२

२

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहां जो सोवत है?

— हे मुसाफिर, तू उठ जा, सवेरा हो गया, अब रात कहां है कि तू सो रहा है? इस भजनका केवल इतना ही अर्थ समझ कर कोई यह मान ले कि उसने भजनका सारा रहस्य समझ लिया है

तो कहा जायगा कि उसने पढ़ा तो है लेकिन विचार नहीं किया है क्योंकि वह केवल सबके उच्चारसे ही अपनेको कृतार्थ हुआ मान लेगा। लेकिन जो विचार करना चाहेगा वह तो अपनेसे पूछेगा 'मुसाफिर कौन है? सबेरा होनेका क्या अर्थ है? सोनेका क्या अर्थ है?' इस तरह विचार करके वह प्रतिदिन एक ही लकीरसे अनन्त अर्थ निकालेगा और समझ जायगा कि यहाँ मुसाफिरका अर्थ है समस्त संसार प्राणी। जिसकी ईश्वर पर श्रद्धा है उसके लिए तो सबेरा सदा ही है। सोनेका अर्थ यहाँ अज्ञान भी हो सकता है। और जो मनुष्य जरा भी असावधान — लापरवाह — रहता है उस पर भजनकी सोनेकी बात लागू होती है। जो मूढ़ बोलता है वह भी सोया हुआ है। उसे भी जाग्रत करनेवाला यह भजन है। इस प्रकार एक लकीरसे व्यापक अर्थ निकाल कर जीवनमें आश्वासन प्राप्त किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक भजन पर किया हुआ गहरा विचार मनुष्यके लिए आध्यात्मिक भोजनका काम दे सकता है। और बार बार पाठ कर लेनेवाले तथा उनके अर्थ भी जाननेवालेके लिए ये सब बोझरूप बन सकते हैं। यह तो मैंने जो उदाहरण याद आ गया वही यहाँ रख दिया है। सब आश्रमवासी अपनी अपनी शिक्षा लेकर स्वयं विचार करने लगें तो वे जीवनमें से नये नये अर्थ खोज निकालेंगे और नित्य नया आनन्द लूटेंगे।

यरवडा मंदिर,
२१-८-३२

२२

विचारपूर्ण कार्य और विचारहीन कार्य

१

वाचन और विचार करनेके बारेमें तो मैं लिख चुका हूँ। आज मैं कार्य और विचारके बारेमें थोड़ा लिखता हूँ। मैं विचार करनेकी कलाको सच्ची शिक्षा मानता हूँ। यह कला हम सीख लें तो दूसरी सब बातें इसके पीछे सुंदर ढंगसे अपना अपना स्थान ले लेंगी।

जिस स्त्रीने नवलेका खूनसे सना हुआ मुँह देखकर उस पर अपना पानीसे भरा मटका दे मारा उसने बिना सोचे विचारे बहुत बुरा काम कर डाला। अंतमें अपने बालकको सांपसे बचानेवाले नवलेकी हत्या करनेके कारण उसे बहुत पछताना पड़ा और इस कलंकको वह जिन्दगी भर मिटा न सकी। उसका मटका फूट गया और पानी बह गया यह बात तो गिनतीमें उन जैसी भी नहीं मानी जायगी। इसलिए उस स्त्रीने नवलेको मारकर बहुत बड़ा अपराध किया।

यह उदाहरण तो अंतिम सीमाका कहा जायगा लेकिन उससे हमारा ध्यान सही विचार पर अच्छी तरह जम सकता है। आश्रममें हम जितने काम करते हैं वे सब विचारके साथ करें तो आश्रमकी शांति बढ़े, करनेवालोंकी कुशलता बढ़े, बहुतसा समय बचे और काममें हमेशा नया रस पैदा हो। यहां बैलोंकी मददसे हम रहट चलाते हैं। बैल बहुत मेहनत करते हैं लेकिन उनके ज्ञानमें कोई वृद्धि नहीं होती। अपने काममें उन्हें कोई रस नहीं होता। सिर पर काम लेनेवाला आदमी न बैठा हो तो बैल रहट नहीं चलायेंगे। लेकिन हम तो मनुष्य हैं। मनुष्यका अर्थ है विचार करनेवाला ज्ञानवान प्राणी। हम जानवरोंकी तरह कभी रह या बन ही नहीं सकते।

आश्रममें हम पाखाने साफ करते हैं। विचार किये बिना हम यह काम करें तो वह हमें हलका लगेगा बुरा लगेगा और हम यहीं

सोचते रहेंगे कि इस काममें हमें कब छुट्टी मिलेगी। विचारके साथ यह काम करें तो हम समझ लेंगे कि पाखाने साफ करना हमारा धर्म है। साफ करनेका मतलब है पाखानेको बिलकुल साफ-सुथरा बनाना, मैलेको अच्छी तरह जमीनमें गाड़ना, सफाईके औजार साफ रखना और मैलेकी परीक्षा करना। मैलेमें खून हो, कृमि हो या कुछ और हो तो हम समझेंगे कि आश्रममें कोई बीमार है। और हम यह खोज निकालेंगे कि कौन लोग बीमार हैं। हर पाखानेका उपयोग कौन कौन करते हैं इसका पता तो हमें होगा ही। इसके सिवा अगर पाखाना साफ करते समय पाया जाय कि मैलको मिट्टीसे अच्छी तरह ढका नहीं गया है, मैल अपनी जगहसे बाहर भी पड़ा है, पेशाब भी नीचे गिरा है तो यह गलती करनेवालोंको हम ढूंढ निकालेंगे और नम्रतासे उन्हें ऐसी गलती न करनेके लिए समझायेंगे। यह सब वही कर सकेगा जो सेवाकी भावनासे पाखानोंकी सफाई करेगा। इसलिए जैसे जैसे हमारे कार्यमें विचारका प्रवेश होगा वैसे वैसे वह सुधरेगा, सरल बनेगा और उसके बाद हमें उसमें रस आयेगा। यहां मैंने पाखानोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी विचारों पर प्रकाश नहीं डाला है। सिर्फ एक नमूना ही दिया है।

हम रसोई-व्यवस्था लें। उसके बारेमें भी विचारपूर्ण काम किया जाय तो हमें रोज पेट भरनेको मिलेगा और खानेकी कलामें होनेवाली प्रगतिका कभी अन्त ही न आयेगा। सब लोग विचारके साथ खूब खायें तो हम अनेक नये काम कर सकेंगे और खूब भी अच्छा काम करेंगे।

यही बात प्रार्थनाको भी लागू होती है। प्रार्थना क्या है? प्रार्थना हम क्यों करते हैं? मौन हम क्यों रखते हैं? प्रार्थना संस्कृतमें क्यों होती है? गुजराती, मराठी या हिन्दी भाषामें क्यों नहीं होती? —ऐसे अनेक विचार करके हम प्रार्थनाको एक प्रबल शक्ति बना सकते हैं। लेकिन आज तो ऐसा मालूम होता है कि प्रार्थनाके बारेमें हम बहुत कम विचार करते हैं।

योग कर्मसु कौशलम् — यह गीताका बड़ा गंभीर और प्रौढ विचार है। योगका अर्थ है मेल साधना। ईश्वरके साथ मेल साधनेका अर्थ है योग। गीतामाताने हमें सिखाया है कि कर्ममें कुशलता प्राप्त करनेसे यह योग आसानीसे सधता है। कुशलता प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालेको कर्ममें लीन अर्थात् विचारमय होना ही चाहिये। विचारपूर्वक तकली पर सूत कातनेवालेने चरखेकी महान खोज की। और विचारपूर्वक चरखा चलानेवालेने हजारों तकुओंवाला यांत्रिक चरखा बनाया। मेरी दृष्टिसे यांत्रिक चरखा बनानेवालेने बुद्धिका उपयोग तो खूब किया लेकिन हृदयका उपयोग नहीं किया। इसलिए विचार भी शुभ विचार होना चाहिये, धर्मकी भावनासे भरपूर होना चाहिये। फिर भी बिल्कुल विचार न करनेकी अपेक्षा यंत्रकी खोज करनेवाले मनुष्यकी विचार शक्ति पूजने लायक ही मानी जायगी।

यरवडा मंदिर
२८-८-३२

२

काम करते समय भी विचारकी शक्तिका पूरा उपयोग करनेके बारेमें मैं इससे पहले लिख चुका हूं। उस लेखके अंतमें मैंने जो विचार प्रकट किया था उसे विस्तारसे समझाना जरूरी है। उसमें मैंने बताया था कि विचार समाजका पोषण करनेवाले भी हो सकते हैं और उसका नाश करनेवाले भी हो सकते हैं। विचार दैवी भी हो सकते हैं और आसुरी भी हो सकते हैं। एक मनुष्य चरखा चलाते चलाते उसमें ऐसे सुधार करनेका विचार कर सकता है जिससे चरखा चलानेवाले लाखों या करोड़ों लोगोंको आराम मिले, लाभ हो। दूसरा मनुष्य ऐसा विचार कर सकता है कि वह स्वयं ही एक चरखेसे लाखों आदमियोंकी कताई जितना सूत काते और लाखों रुपये कमाये तो कैसा अच्छा हो? पहले मनुष्यके विचार दैवी हैं, समाजका पोषण करनेवाले हैं, दूसरे मनुष्यके विचार आसुरी हैं, समाजके भलेको नुकसान पहुंचानेवाले हैं। इसलिए हर काम करते समय केवल विचार

करना ही हमारे लिए काफी नहीं है। परन्तु वे विचार सबका भला करनेवाले होने चाहिये, सिर्फ हमारा ही मतलब साधनेवाले नहीं होने चाहिये। सच तो यह है कि जो आदमी सिर्फ अपना ही मतलब साधनेका प्रयत्न करता है वह दूसरोंको तो नुकसान पहुंचाता ही है, लेकिन आखिरमें अपना मतलब भी साधनेमें असफल रहता है।

इस दृष्टिको अपने सामने रखकर अगर सब लोग अपने हर कामके बारेमें विचार करें और समझदारीसे काम करें, तो वे उत्तम शिक्षा ग्रहण करते हैं, अपने कामको आनन्द देनेवाला बनाते हैं, अपनी बुद्धिका विकास करते हैं, अपने हृदयको विशाल और शुद्ध बनाते हैं, काममें कुशलता प्राप्त करते हैं और उसमें समाजका भला हो ऐसा साज और सुधार करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि अपने काममें उनका रस बढ़ता है, जिससे उन्हें आनन्द होता है, काममें उन्हें थकावट नहीं लगती और वह कलापूर्ण बनता है। फिर भले वह काम पाखाना साफ करनेका हो, रास्ता साफ करनेका हो, साग-भाजी काटनेका हो, गाना गानेका हो, पुस्तकें लिखनेका हो या और कोई हो। जिस मनुष्यकी दृष्टि परोपकारकी — दूसरोंका भला करनेकी — बन जाती है उसे कोई भी काम हलका या नीरस नहीं लगता। जो भी काम उसे करनेको मिलेगा उसमें वह भगवानको देखेगा, उसीको सेवा मानेगा। उसका रस, उसका आनन्द कामकी जाति पर निर्भर नहीं करता। उसका रस हमेशा भीतरसे निकलता है, कर्तव्यमें लगे रहनेकी भावनासे निकलता है। जो मनुष्य अनासक्ति-योगको समझना और साधना चाहता है उसे अपना हर काम इसी तरह करना चाहिये।

यरवडा मन्दिर
११-९-'३२